कुरुक्षेत्र

जून 1995

पांच रुपये

पर्यावरण प्रदूषण और मानव

इंदिरा प्रियदर्शिनी वृक्षमित्र पुरस्कार

वर्ष 1993 के इंदिरा प्रियदर्शिनी वृक्षमित्र पुरस्कारों की घोषणा कर दी गई है। ये पुरस्कार व्यक्तियों, स्वैच्छिक एजेंसियों, पंचायतों और अन्य ग्राम स्तरीय निकायों, शैक्षिक संस्थाओं, सरकारी एजेन्सियों तथा निगमित क्षेत्रों को वनीकरण और परती भूमि विकास के क्षेत्र में किए गए उनके उत्कृष्ट कार्यों को मान्यता देने के लिए दिए जाते हैं। प्रत्येक पुरस्कार में एक पदक, एक प्रशस्ति पत्र तथा 50,000 रुपये नकद दिए जाते हैं। वर्ष 1993 के पुरस्कार विजेता इस प्रकार हैं:

सरकारी एजेंसी

- जम्मू सामाजिक वानिकी प्रभाग, जम्मू तवी
- क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशाला (एफ. आर. एस.), 3 इन्फेन्ट्री डिवीजन मार्फत 56 ए. पी. ओ.

शैक्षिक संस्था

- महात्मा फूले कृषि विद्यापीठ, राहूरी, अहमदनगर, महाराष्ट्र

स्वैच्छिक एजेंसी

- वीमेनस् संगम्स ऑफ द डक्कन डिवेलपमेंट सोसाइटी, गांव अलगोले, मेडक, आन्ध्र प्रदेश
- ग्रामीण विकास परिषद, देवधर, बिहार

पंचायत/ग्राम स्तरीय संस्था

- मुदलै फिशर मैन्स कोआपरेटिव सोसायटी लिमिटेड कलकत्ता, पश्चिम बंगाल

निगमित क्षेत्र

- टाटा इंजीनियरिंग एंड लोको कंपनी लिमिटेड (टेलको) पिम्परी, पूणे

इन पुरस्कार विजेताओं का चयन देश भर से प्राप्त हुए 264 नामाकंन पत्रों में से किया गया।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

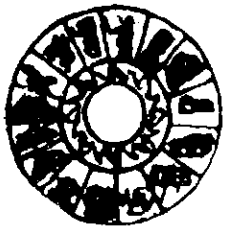

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 8 ज्येष्ठ-आषाढ़ 1917, जून 1995

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी
उप निदेशक (उत्पादन)	:	एस.एम. चहल
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	पी० एन० बुलकुंडे
आवरण सज्जा	:	फेम क्रिएटिव एडवर्टाइजिंग

एक प्रति : पांच रुपये वार्षिक चंदा : 50 रुपये

फोटो साभार : रमेश चंद्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय

इस अंक में

विकास और पर्यावरण में संतुलन	कमल नाथ	3
पर्यावरण को बचाये रखने में ही मानव की सुरक्षा है	डा. इंद्र देव सिंह	5
बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण से गांवों की अस्मिता खतरे में	डा. कृष्ण कुमार मिश्र	7
धरती का रक्षा कवच – ओज़ोन परत –एक संत्रास	कु. पुष्पा अग्रवाल	9
पर्यावरण चेतना और युवा वर्ग	मोहन नायक	12
नानकू (कहानी)	महेश चन्द्र जोशी	16
वृक्ष हमारे परम सहयोगी	डा० सीताराम सिंह "पंकज"	18
जंगल से आती है आवाज : बचाओ	डा. गणेश कुमार पाठक	20
खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से ग्रामीण विकास की संभावनाएं	सुरेश अवस्थी	23
ग्रामीण युवाओं में नेतृत्व विकास : आवश्यकता और महत्व	वेद व अंशी	25
जल प्रदूषण का गहराता संकट	राजीव रंजन वर्मा	27
सावधान! मानव-जाति संकट में है	शुभंकर वनर्जी	31
महिलाओं और पुरुषों में असमानताएं दूर करने पर बल	राधा विश्वनाथ	33
सामाजिक वानिकी विस्तार व पर्यावरण संरक्षण	डा. विपिन कुमार	35
ग्रामीण उपभोक्ताओं के लिए भी सुलभ है सस्ता न्याय	डा. कमलेश रानी	38
पारिस्थितिक विकास की आवश्यकता	रमेश चन्द्र पारीक	41
उभरती संवेदनहीनता – हास्य एक समाधान	राजेश कुमार	43
पंचवर्षीय योजनाएं एवं ग्रामीण विकास रणनीति	अमित कुमार सिंह	45
वनों के विकास में वृक्ष सहकारिता की भूमिका	सुशील राय	47

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो। 'कुरुक्षेत्र' हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित होती है।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

पाठकों के विचार

मैं 'कुरुक्षेत्र' जनवरी 94 से नियमित ही पढ़ता आ रहा हूं। इसका मुझे बेसब्री से इन्तजार हुआ करता है। फरवरी 1995 अंक पढ़ा बहुत ही रोचक लगा। "ग्रामीण बाजारों का विकास", "कृषि विपणन आवश्यक क्यों" और "श्रम की भट्टी में झुलसता बचपन" अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं।

इस अंक में प्रकाशित डा. शीतांशु भारद्वाज की कहानी 'कर्मयोगी' बहुत ही उत्कृष्ट है। आज की युवा पीढ़ी इससे प्रेरणा प्राप्त कर सकती है। काश देश का हर नागरिक ऐसा करता। 'अभिशाप' लघुकथा आज की सामाजिक मनोभावना पर अमिट छाप छोड़ती है। इस अंक की विलक्षणता इसके आवरण पृष्ठ से ही झलकती है। ग्रामीण क्षेत्र पर अधिक सामग्री के लिए इससे जुड़े प्रत्येक व्यक्ति को मेरी बधाई। जैसा हम सभी जानते हैं कि ग्रामीण महिला अभी भी अत्यंत पिछड़ी हुई है। इसलिए मेरा आग्रह है कि उनके स्तर को ऊंचा करने के लिए अधिक से अधिक प्रेरणादायक सामग्री इस विषय पर दें।

उमानाथ झा,
ग्राम हेठीवाली, पोस्ट-कोठिया,
थाया-झंझारपुर मधुबनी (बिहार)

'कुरुक्षेत्र' का फरवरी 1995 अंक प्राप्त हुआ। इस अंक में डा. शीतांशु भारद्वाज द्वारा लिखित 'कर्मयोगी' कहानी बहुत ही बेजोड़ लगी। मैं 1995 के फरवरी अंक को पढ़कर इसका अब नियमित पाठक हो गया हूं। कुरुक्षेत्र का यह अंक ज्ञानवर्धक एवं संग्रहणीय है। इनके लेख, कहानी, कविता पढ़कर पत्र लिखने को विवश हो गया हूं। डा. बद्री विशाल त्रिपाठी का लेख "ग्रामीण विकास के आयाम और उपलब्धियां" बहुत ही अच्छा और ज्ञानवर्धक लगा।

संजय कुमार केशरी,
ओ. ए. डिपार्टमेंट,
एल. एच. ओ., एस. बी. आई,
जे. सी. रोड, पटना (बिहार)

मैंने आपकी पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' में प्रकाशित (फरवरी 1995 अंक) कहानी 'कर्मयोगी' पढ़ी। वास्तव में इस कहानी को पढ़ने से मन में बड़े ही ऊंचे विचारों का संचार हुआ।

यदि हर विभाग का आदमी धीरज की भांति ईमानदार तथा सच्चा दिल इंसान बन जाये तो सभी कार्यक्रम जो सरकार द्वारा चलाये जाते हैं तो उससे केवल लक्ष्य की प्राप्ति ही नहीं बल्कि लक्ष्य से काफी ज्यादा लाभ होगा।

अतः जरूरत इस बात की है कि इस कहानी से लोग प्रेरणा लें। मेरी तरफ से इस कहानी के लेखक डा. शीतांशु भारद्वाज को हार्दिक बधाई।

मुकेश कुमार,
ग्राम – पो.–अलीगंज,
जिला-जमुई (बिहार)

'कुरुक्षेत्र' के फरवरी 1995 के अंक में प्रो. उमरावल शाह का आलेख 'जनसंख्या नियंत्रण में ग्रामीण सहकारी समितियों की भूमिका' सामयिक एवं सारगर्भित है। किन्तु कुछ बातें जो मैं कहना चाहती हूं शायद उसकी ओर आपने ध्यान नहीं दिया। हमारे देश में आंकड़ों के आइने में यदि परिवार कल्याण कार्यक्रम को देखा जाए तो कार्यक्रम को बिल्कुल असफल नहीं माना जा सकता। जनसंख्या विस्फोट का एक बड़ा कारण है कि इस दिशा में पुरुषों का झुकाव कम होना, अर्थात पुरुष नसबन्दी जो परिवार को नियंत्रित करने के लिए अनिवार्य है, उसका प्रतिशत जितनी तेजी से बढ़ना चाहिए था नहीं बढ़ पा रहा है। ध्यान देने वाली बात है कि पुरुषों की प्रजनन क्षमता काफी अधिक उम्र तक कायम रहती है।

तीसरी बात जो महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित है वह है प्रयोग की बात। परिवार नियोजन के जितने अस्थायी साधन हैं, चाहे वह गर्भनिरोधक टिकियां हो या कॉपर टी या अन्य साधन सभी महिलाओं के लिए प्रयुक्त होते हैं। जब जनसंख्या विस्फोट में पुरुषों की भागीदारी अधिक है (प्रजनन क्षमता के आलोक में) तो प्रयोग महिलाओं पर क्यों हो रहे हैं?

यदि जनसंख्या विस्फोट को वास्तव में रोकना है तो पुरुषों को नियंत्रित होना होगा, उनकी नसबंदी ज्यादा कारगर होगी जनसंख्या को नियंत्रित करने में।

सहकारी समितियों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं को इसके लिए लोगों को जागरूक करने की जरूरत है।

डा. किरण बाला,
श्यामा भवन,
वेस्ट बोरिंग केनाल रोड,
पटना-800001
(शेष पृष्ठ 15 पर)

विकास और पर्यावरण में संतुलन

कमल नाथ
वनमंत्री, भारत सरकार

मानव की सभी गतिविधियों में से पर्यावरण एक ऐसी गतिविधि है जिसे सबसे अधिक गंभीर खतरा औद्योगीकरण से होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि विभिन्न स्रोतों से एकत्रित की गई कच्ची सामग्रियों और ऊर्जा को एक ही स्थान पर लाकर उन्हें उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। इस प्रक्रिया से निश्चित ही काफी मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ निकलते हैं। ये अपशिष्ट ठोस, द्रव और गैसों के रूप में निकलते हैं। उद्योगों से होने वाले अपशिष्ट बहिस्राव से उनके निकट बसे लोगों के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो सकता हैं इनसे अम्ल वर्षा के साथ-साथ पृथ्वी का तापमान बढ़ने और ओज़ोन की परत में छेद होने की स्थिति हो सकती है। द्रव के रूप में बहकर निकलने वाले अपशिष्टों से उद्योगों के निकट स्थित भूजल दूषित हो जाता है और नदियों को प्रदूषित कर देता है जो इस प्रदूषित जल को सैकड़ों मील दूर बहाकर ले जाती हैं। गैर-अवक्रमणकारी जैव पदार्थों सहित ठोस अपशिष्ट खतरनाक हो सकते हैं और कई प्रकार की समस्याएं पैदा कर सकते हैं।

पर्यावरण अभियान

पर्यावरण अभियान के प्रथम चरण में प्रदूषण नियंत्रण के उपायों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। आरंभ में यह पाइपों से निकलने वाले अपशिष्टों के उपचार का ही एक प्रयास था। लेकिन कालांतर में अपशिष्टों के उपचार की तुलना में उनके पैदा होने को रोकना कम खर्चीला पाया गया। अब सारे विश्व में स्वच्छ प्रौद्योगिकियों को तैयार करने के साथ-साथ अपशिष्ट को कम करने वाली प्रक्रिया के उपयोग पर बल दिया जा रहा है ताकि कम से कम अपशिष्ट निकलें और बेहतर तो यह हो कि अपशिष्ट बिल्कुल ही न पैदा हों। लेकिन अपशिष्टों को कम करने के लिए हम कितनी ही बेहतर प्रौद्योगिकी का प्रयोग करें, अंततः कुछ-न-कुछ अपशिष्ट निकलते ही हैं जिनको ठिकाने लगाना ही होता है।

इस संदर्भ में अपशिष्टों का पुनरोपयोग महत्वपूर्ण हो जाता है। पर्यावरणविदों की नई धारणा यह है कि विनिर्माण गतिविधियों की एक ऐसी श्रृंखला तैयार की जाए जो विभिन्न विनिर्माता इकाइयों से मेल खाती हो। प्रयास है कि एक इकाई के अपशिष्टों को दूसरी इकाई में उपयोग में लाया जाए और इस तरह एक ऐसी श्रृंखला तैयार की जाए जहां अंततः कोई अपशिष्ट बचे ही नहीं। यह एक आदर्श स्थिति होगी क्योंकि प्रकृति भी अब तक इसी तरह से संचालित होती आई है और लाखों वर्षों से भी अधिक समय से ऐसी प्रणाली ही विकसित हुई है। प्रकृति में एक प्रजाति द्वारा उत्सर्जित अपशिष्ट किसी दूसरी प्रजाति का भोजन बन जाते हैं। विभिन्न जीवों के बीच खाद्य श्रृंखला इस अनुकूलता का एक उदाहरण है। यदि मानव इस संदर्भ में प्रकृति का अनुसरण कर सके, तो हमारा ग्रह अत्यधिक औद्योगीकरण के कारण जिस स्थिति में पहुंच गया है उसमें भी पर्यावरण के काफी अनुकूल हो जाएगा।

निरंतर विकास

निरंतर विकास की बात से हम पर्यायरण और विकास के बीच शाश्वत समस्या के मुद्दे पर पहुंच जाते हैं। भारत और अन्य विकसित देश इसी समस्या से दो-चार हो रहे हैं। निरंतर विकास वहां संभव है, जहां पर्यावरण और विकास एक-दूसरे के परिपूरक बन जाते हैं। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में बेहतर जीवन-स्तर जीने की गरीब लोगों की आकांक्षाओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लेकिन इसके साथ ही, विकास के नाम पर देश के पर्यावरण को नष्ट करने की अनुमति भी नहीं दी जा सकती। जरूरत इस बात की है कि विकास और पर्यावरण आवश्यकताओं के बीच एक संतुलन स्थापित किया जाए।

सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नई नीति ने नई चुनौतियां उपस्थित कर दी हैं। विनिर्माण के क्षेत्र में नए उद्यमी नए उत्पाद तैयार करने के लिए प्रवेश कर रहे हैं। एक प्रवृत्ति देखने में आ रही है कि औद्योगीकृत केन्द्रों पर ही नए उद्योगों का जमाव बढ़ता जा रहा है जिससे उन स्थानों पर प्रदूषण का दबाव भी बढ़ रहा है। इसीलिए सरकार ने हर नई परियोजना के लिए पर्यावरणीय स्वीकृति को अनिवार्य बनाने का निर्णय किया है। इससे देश को औद्योगीकरण की ऐसी योजना बनाने में मदद मिलती है जो

पर्यावरण के अनुकूल हो। अब हर परियोजना से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव के विश्लेषण पर बल दिया जाता है और उसे स्वीकृति देने से पूर्व पर्यावरण संबंधी शर्तों को इसमें शामिल करना पड़ता है। हमारा यह प्रयास रहेगा कि औद्योगीकरण में आई नई तेजी से देश में पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।

संसाधनों का संरक्षण पर्यावरण संबंधी कार्यवाही का मूलाधार है। जैव-विविधता के संदर्भ में भारत सबसे धनी देशों में से एक है लेकिन वनों की कटाई, वन पशुओं के अवैध शिकार औद्योगीकरण के दबाव, जनसंख्या वृद्धि इत्यादि के कारण हम इस विविधता को तेजी से नष्ट कर रहे हैं। हमारी सरकार ने देश की जैव-विविधता को संरक्षित रखने के लिए अनेक उपाय किए हैं। हमें अपने वनों का क्षेत्र बढ़ाने में सफलता मिली है और सरकार के प्रयासों से वन क्षेत्र को बढ़ाने का संभवतः हमारा देश एक दुर्लभ उदाहरण है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

अग्नि-रोधी छप्पर बनाने की तकनीक

हमारे देश की कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग छप्परों में रहकर जीवन यापन करता है। छप्परों में प्रयोग होने वाला सारा सामान इतना ज्वलनशील होता है कि आग की छोटी-सी चिंगारी से ही पूरा छप्पर जलकर राख हो जाता है। केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान (सी. बी. आर. आई.) रुड़की के वैज्ञानिकों ने घास फूंस के छप्परों को अग्निरोधी बनाने की तकनीक खोज निकाली है। इस विधि से तैयार किए गए छप्परों में आग नहीं लग सकती है और ये 7-8 साल तक ज्यों के त्यों टिके रहते हैं। इसका कारण यह है कि ये छप्पर अग्निरोधी होने के साथ-साथ जलरोधी भी होते हैं। प्लास्तर होने के बाद ये भारी हो जाते हैं, अतः आंधी तूफान में उड़ते भी नहीं है। देखने में भी ये छप्पर बहुत सुंदर लगते हैं। गरीबों के लिए छप्पर बनाने की यह तकनीक वरदान सिद्ध होगी।

अग्नि-रोधी छप्पर बनाने की तकनीक बहुत सरल और सस्ती है। केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की में कापार्ट के सहयोग से देशभर की स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को इस तकनीक का प्रशिक्षण दिया जाता है। तीन दिन के प्रशिक्षण में इस तकनीक में दक्ष होकर ये कार्यकर्ता इसकी जानकारी तथा प्रशिक्षण अपने-अपने क्षेत्र में उन लोगों को दे सकते हैं जो वास्तव में छप्परों में रह रहे हैं। इससे यह तकनीक पूरे देश में लोकप्रिय हो जाएगी और फिर किसी छप्पर में आग लगने की संभावना नहीं रहेगी।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

५ जून को पर्यावरण दिवस पर विशेष

पर्यावरण को बचाये रखने में ही मानव की सुरक्षा है

डा. इन्द्र देव सिंह

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का रूप धारण कर चुकी है। सम्पूर्ण विश्व में आणविक शस्त्रों के निर्माण और परीक्षणों के अलावा यदि कोई विश्वव्यापी समस्या है तो वह है "पर्यावरण प्रदूषण" की। इस समस्या ने सम्पूर्ण मानव जाति को झकझोर दिया है। वास्तव में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पश्चिमी संस्कृति की ही देन है। समय के साथ-साथ जैसे-जैसे औद्योगिक तथा शहरी संस्कृति का दैत्य विकराल रूप धारण करता जा रहा है वैसे-वैसे पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। पर्यावरण जिसमें मनुष्य निवास करता है, जल तथा वायु जो मानव जीवन हेतु अत्यावश्यक है दिन-प्रतिदिन दूषित होते जा रहे हैं। वायु प्रदूषण हो, जल प्रदूषण हो, ध्वनि प्रदूषण हो अथवा प्रदूषण का कोई भी रूप हो मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत ही खतरनाक है।

सुविख्यात अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री श्री माल्टर एम. शिर्श का यह कथन है कि – "चन्द्रमा मानव निवास के लिए उपयुक्त स्थान नहीं है। और न ही 'शुक्र' तथा 'मंगल ग्रह' है। हमारे लिए उत्तर यही होगा कि हम जो कुछ कर सकते हैं, पृथ्वी को स्वच्छ बनाने के लिए करें, क्योंकि यही वह जगह है जहां हमें रहना है" मीचीन प्रतीत होता है।

प्रकृति और मानव का सम्बन्ध आदि काल से रहा है, प्रकृति पूरी मां है जो सभी कुछ अपने बच्चों पर न्यौछावर कर देती किन्तु जननी से छीन कर लेना पुत्र को कहां तक शोभा देता मानव की विकासात्मक क्रियाओं के परिणामस्वरूप "प्रदूषण" जन्म हुआ है। इसके अलावा किसी पारिस्थितिकी तंत्र में सभी घटक एक निश्चित मात्रा में होते हैं। यदि इस अनुपात में किसी स्तर में कमी या बढ़ोतरी हो जाए वह पूरे पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित करती है। इसी असन्तुलन को प्रदूषण कहा जाता

र्यावरण का निर्माण

पर्यावरण का निर्माण प्रमुख पांच घटकों की अर्न्तक्रियाओं फलस्वरूप हुआ है। खनिज शैल, जल, वायु, जीव और ऊर्जा ये पांच घटक हैं जिनकी आपसी प्रतिक्रियाओं के द्वारा पर्यावरण का निर्माण होता है। चित्र नीचे दर्शाया गया है :–

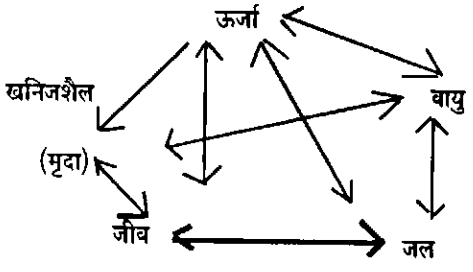

वायु प्रदूषण

वायुमण्डल में विद्यमान गैसें एक निश्चित मात्रा और अनुपात में होती हैं। जब वायु के अवयवों में अवांछित तत्व प्रवेश कर जाते हैं तो उसका मौलिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। वायु के दूषित होने की प्रक्रिया "वायु प्रदूषण" कहलाती है। वायुमण्डल में लगभग 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत आक्सीजन, 0.3 प्रतिशत कार्बन डाई आक्साईड तथा शेष निष्क्रिय गैसें पायी जाती हैं।

स्वचलित यान

वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये विभिन्न तथ्यों और आंकड़ों पर यदि हम एक सरसरी नजर डालें तो स्वतः ही स्पष्ट हो जाएगा कि पर्यावरण प्रदूषण की स्थिति कितनी विस्फोटक है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार एक मोटर गाड़ी एक मिनट में इतनी आक्सीजन खर्च करती है जितनी 1135 व्यक्ति सांस लेने के लिए उपयोग करते हैं। आज विश्व में जिस द्रुतगति से जनसंख्या वृद्धि हो रही है उससे कहीं अधिक गति से स्वचलित वाहनों की संख्या बढ़ रही है। इस प्रकार प्रकृति द्वारा जो आक्सीजन केवल जीवधारियों के लिए सुरक्षित की गई थी वह उनके लिए सुरक्षित न रहकर अब स्वचलित वाहनों द्वारा प्रचुर मात्रा में नष्ट की जा रही है। वैज्ञानिकों के एक अनुमान के अनुसार 100 वर्षों में 24 लाख टन आक्सीजन वायुमण्डल में समाप्त हो चुकी है और उसकी जगह 36 लाख टन कार्बन डाई आक्साईड गैस ले चुकी है जिससे कई प्रकार के दुष्प्रभावों का जन्म हुआ है।

जल प्रदूषण

पृथ्वी के सम्पूर्ण क्षेत्रफल पर 70 प्रतिशत जल मिलता है, इसके बाद भी मनुष्य और पशु पक्षी प्यास से मर जाते हैं तथा पेड़ पौधे सूख जाते हैं। जल में आवश्यकता से अधिक खनिज लवण कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ और अम्ल कारखानों द्वारा विसर्जित किए जाते हैं जो जल को प्रदूषित कर देते हैं। भारत में गंगा, यमुना, गोमती आदि जैसी नदियां आज प्रदूषण की चपेट में आ चुकी हैं।

तीव्र औद्योगीकरण से जल प्रदूषण की समस्या और गंभीर होती जा रही है,.क्योंकि औद्योगिक कारखानों के गन्दे अपशिष्ट पदार्थों के नदियों में विसर्जन से आक्सीजन की मात्रा घटती है तथा सल्फेट, नाइट्रेट और क्लोराइड आदि की मात्रा बढ़ती है। इससे जलीय जन्तुओं व जलीय वनस्पतियों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ग्रीन हाउस प्रभाव

वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा निरन्तर बढ़ रही है जिससे तापमान बढ़ रहा है। वैज्ञानिकों के अनुसार विगत 50 वर्षों में वायुमण्डल का तापमान एक डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। अब यदि 3.6 डिग्री सेल्सियस तापक्रम और बढ़ता है तो परिणामतः समुद्र के जल स्तर में वृद्धि होने से तटीय नगरों की स्थिति दयनीय हो जायेगी। विश्व में 48 राष्ट्रों के 300 वैज्ञानिकों ने जून 1988 में टोरंटो सम्मेलन में ग्रीन हाउस प्रभाव, मौसम में बदलावों तथा उससे सम्बन्धित खतरों के बारे में अत्यधिक चिन्ता व्यक्त की।

ओज़ोन परत

वायुमण्डल में स्थित ओज़ोन परत मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सूर्य से आने वाली "पराबैंगनी" किरणों को ढाल की तरह रोककर जन-जीवन की रक्षा करती है। ये हानिकारक किरणें भू-मण्डल पर आकर हमारे शरीर में त्वचा का कैंसर और आंखों में मोतियाबिंद उत्पन्न कर अन्धापन बढ़ाती है। यही नहीं इससे जीवों और फसलों आदि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

यदि रसायनों का उपयोग नहीं रोका गया तो अगले 70 वर्षों में ओज़ोन परत लगभग 10 प्रतिशत तक क्षतिग्रस्त हो जाएगी और मानव को पराबैंगनी किरणों के दुष्प्रभावों को भुगतना पड़ेगा।

ध्वनि प्रदूषण

दूषित वायु तथा जल की तरह शोर भी मानव के लिए हानिकारक है। ध्वनि प्रदूषण कारखाने की मशीनों, लाउडस्पीकरों, विमानों, रेलगाड़ियों, मोटर गाड़ियों आदि से होता है। ध्वनि प्रदूषण से श्रवण शक्ति का ह्रास होता है। तीव्र ध्वनि नींद में भी बाधक है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 75 डेसीबल के ऊपर शोर से बहरापन, तनाव, चिड़चिड़ापन, गर्भपात तथा सोचने व समझने की क्षमता में कमी आ जाती है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि प्रदूषण रूपी दानव आज वायु, जल, मिट्टी, ध्वनि आदि में प्रविष्ट कर मनुष्य के सुख को ठीक उसी प्रकार छीन रहा है जैसे मनुष्य विकास के नाम पर प्रकृति को लूट रहा है।

प्रगति एवं प्रकृति एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी न होकर पूरक हैं। परन्तु प्रगति के नाम पर प्रकृति की अवहेलना नहीं की जा सकती। अतः दोनों में सामंजस्य आवश्यक है।

प्रदूषण पर नियंत्रण

प्रदूषण एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन चुका है। प्रदूषण के खतरों से रक्षा करना किसी एक देश के लिए सम्भव नहीं है। इस कार्य के लिए सभी राष्ट्रों की भागीदारी की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 5 जून को प्रतिवर्ष विश्व पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए "धरती रक्षा कोष" बनाने का सुझाव दिया था जिसका ब्रिटेन को छोड़कर सभी देशों ने मुक्त कंठ से स्वागत किया।

भविष्य

पर्यावरण विज्ञान वर्तमान समय में काफी महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। मानव-समाज इस बात से अनभिज्ञ नहीं रहा कि प्रकृति के सिद्धांतों को समझकर और उसी के अनुसार कार्य करके ही अपने अस्तित्व को बचाया जा सकता है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान आदि ने अपनी उपयोगिता पहले ही सिद्ध कर दी है केवल पर्यावरण विज्ञान इन सभी विज्ञानों के विनाशकारी प्रभावों को दूर करने में सक्षम है। क्योंकि यह एक बहुक्षेत्रीय संश्लेषित विज्ञान है। अतः विश्व के सभी राष्ट्र इस विज्ञान को महत्व दे रहे हैं क्योंकि यह विज्ञान प्रत्यक्षतः मानव जीवन को प्रभावित करता है। यह मानव को प्रदूषण रहित जीवन जीने का रास्ता बताता है।

के. आर. के. टिम्बर वर्क्स,
सैयदराजा, उ. प्र.,
वाराणसी

बढ़ते हुए पर्यावरण प्रदूषण से गांवों की अस्मिता खतरे में

डा. कृष्ण कुमार मिश्र
प्राध्यापक, भूगोल विभाग
अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
अतर्रा-210201 (बांदा) उ. प्र.।

वस्तुतः पर्यावरण प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है जिसका प्रत्येक स्वरूप मानव-सभ्यता के लिए चुनौती बना हुआ है। आज जहां एक तरफ शहरी वातावरण औद्योगिक प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण आदि से प्रभावित है, वहीं दूसरी तरफ गांव भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं। गांवों में प्रदूषण से प्राकृतिक सुन्दरता खतरे में पड़ गयी है। निरन्तर बढ़ते हुए प्रदूषण तथा अन्धाधुन्ध प्रयोग में लाये जाने वाले वैज्ञानिक साधनों के कुप्रभाव से आज अन्न में वह जीवन शक्ति नहीं, फूलों में सुगन्ध नहीं, फलों में मधुरस नहीं, दूध में मिठास नहीं, औषधियों में वह गुण नहीं, और कहां तक कहा जाए। उस अमृतत्व का लोप हो चुका है जो सुखी और स्वस्थ जीवन का स्रोत था।

जीवन-संग्राम में मनुष्य इतना उलझ गया है कि प्राकृतिक सुन्दरता की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। झरनों का कलनाद, चिड़ियों का कलरव, स्वच्छंद वातावरण, शीतल और सुवासित वायु के स्पर्श का अलौकिक सुख क्या कभी कृत्रिम साधनों से प्राप्त हो सकता है? आज हमारे अन्दर वह चेतना शक्ति नहीं है जो होनी चाहिए। इसका कारण पर्यावरण का दूषित होना है। इस गम्भीर समस्या के प्रति ग्रामीण जनों को जागरूक करने की परम आवश्यकता है।

गांवों में प्रदूषण की प्रकृति

गांवों में पर्यावरण प्रदूषण के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं जिनमें मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण, वनों के कटाव से उत्पन्न प्रदूषण तथा जीवाष्म ईंधन के दहन से उत्पन्न प्रदूषण आदि मुख्य हैं। रासायनिक खादों के लगातार तथा अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी दूषित हो रही है। गांवों में नदियों, नहरों, पोखरों के किनारे मलमूत्र त्यागना, गन्दे वस्त्र धोना, पशुओं को नहलाना और स्वयं स्नान करने से जल निरन्तर दूषित हो रहा है। इतना ही नहीं निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव से कृषि-भूमि में लगातार विस्तार किये जाने के उद्देश्य से आज प्रति व्यक्ति वन क्षेत्र की उपलब्धता 2 हेक्टेयर से घटकर 0.04 हेक्टेयर हो गयी है। गांवों में ईंधन के रूप में लकड़ी, गोबर के उपले, पौधों के सूखे डंठलों तथा कोयले का प्रयोग किया जाता है लेकिन जीवाष्म ईंधन के दहन से प्रदूषण उत्पन्न होता है क्योंकि इसमें ईंधन के रूप में कूड़ा-करकट, गीली लकड़ी तथा अधिक धुआं देने वाले कोयले का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः रसोईघरों में इस प्रकार के ईंधन के प्रयोग से वायुमंडल में कार्बन मोनो आक्साइड तथा अनेक किस्म के हाइड्रोकार्बन आदि जन्म लेते हैं, जो प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं।

प्रदूषण के दुष्परिणाम

वस्तुतः प्रदूषण से निम्न खतरे उत्पन्न हो सकते हैं जो मानव जीवन के लिये अत्यन्त घातक हैं :

1. दूषित मिट्टी में बोई जाने वाली फसलों में विषैले तत्व पहुंचते हैं तथा उनके प्रयोग से अनेक रोगों का जन्म होता है।
2. विषैले तत्वों की उपस्थिति से मिट्टी की उत्पादकता में संलग्न सूक्ष्म जीवों की स्वाभाविक क्रिया में ह्रास होता है तथा उत्पादन क्षमता में कमी आती है।
3. प्रदूषित जल से अनेक किस्म के रोगों (हैजा, पेचिश, पीलिया, डायरिया आदि) एवं विषैले कीटाणुओं का जन्म होता है।
4. वनों की कटाई से न केवल वर्षा की मात्रा, भूमिगत जल के स्तर एवं जल स्रोतों में कमी आयी है बल्कि इसके चलते बाढ़, सूखा, भूस्खलन तथा प्राकृतिक आपदाओं में वृद्धि हो रही है। यदि वृक्षों की कटाई का सिलसिला तीव्रगति से चलता रहा तो भविष्य में शीघ्र ही एक समय ऐसा आएगा कि वातावरण में प्राणवायु की कमी हो जायेगी और मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।
5. दूषित ईंधन के दहन से उत्पन्न धुएं का स्वास्थ्य पर कुप्रभाव पड़ता है इससे मानव शरीर में आक्सीजन के संचार के लिए अभीष्ट होमोग्लोबिन की मात्रा में कमी हो जाती है।
6. रसोईघरों में काम करने वाली महिलाओं में खून की कमी

तथा विषैले धुएं में विद्यमान फार्मेल्डीहाइड से आंख, नाक, गले और त्वचा में जलन होती है।

प्रदूषण रोकने हेतु उपाय

ग्राम्यांचलों को प्रदूषण मुक्त रखने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं :

1. मृदा प्रदूषण की रोकथाम के लिए समय-समय पर मिट्टी का परीक्षण कराया जाए तथा भूमि में अवशेष के रूप में रहने वाले कीटनाशियों तथा रासायनिक खादों का कम मात्रा में प्रयोग किया जाए।
2. जल प्रदूषण से बचाव हेतु नदियों, नहरों, पोखरों के पानी में कूड़ा-करकट न फेंका जाए और समय-समय पर कुओं, तालाबों की सफाई कराई जाए।
3. वृक्षारोपण को प्रमुखता प्रदान की जाए क्योंकि जैवमण्डल में आक्सीजन की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति और कार्बन डाई आक्साइड के अवशोषण का काम केवल सघन वन का कवच ही कर सकता है।
4. धुएं के दुष्परिणाम से बचाव हेतु कम धुआं देने वाली लकड़ियों यथा बबूल, कैथा आदि को प्रयोग में लाया जाए तथा रसोईघरों में हवादार रोशनदानों का प्रबन्ध और चिमनीदार चूल्हे का प्रयोग किया जाए। खाना बनाने के लिए गैस एवं सौर ऊर्जा से चलने वाले चूल्हों का प्रयोग किया जाए।

गांवों में प्रदूषण की वृद्धि से ग्राम्य जन-जीवन बुरी तरह त्रस्त हो सकता है। आज भी गांव गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, पिछड़ेपन आदि से ग्रसित हैं। ऐसी दशा में गांवों को प्रदूषण रहित एवं खुशहाल रखना अति आवश्यक है। इसके लिए हम सबको सतर्क होना पड़ेगा। प्रकृति से प्रेम करना होगा और बनावटी जीवन का परित्याग करना पड़ेगा। विज्ञान/आधुनिक तकनीक के प्रयोग को नयी दिशा देनी होगी जिससे भावी पीढ़ी को इस संकट का सामना न करना पड़े।

वस्तुतः,

यदि यही हाल अब बना रहा
तो आगे चलकर क्या होगा।
आओ सब मिलकर यह सोचें
जीवन कैसे सुखमय होगा।।

आज हमें फिर से अपनी भूलों पर प्रायश्चित करना होगा। विज्ञान के कुप्रभाव को बदलकर स्वच्छ वातावरण तैयार करना होगा। इसका एक ही उपाय नजर आता है वह है प्रकृति से प्रेम। प्रकृति से नया रिश्ता जोड़ना होगा तभी गांव के लोग स्वस्थ और नीरोग रहकर आनन्दमय जीवन जी सकते हैं। उसी में हम सबका अर्थात् मानव-जीवन का कल्याण निहित है।

चेतावनी

विजेन्द्र पाल सिसोदिया

तुम्हारी कुल्हाड़ी का
आहार बना
पेड़
खड़ा है ठूंठ की शक्ल में
आज भी
नंगी होती पहाड़ियों पर आंसू बहाता
बेबस, चुपचाप।
जबकि तुम
खींचे चले जाते हो
पहाड़ियों का हरियाया आंचल
दुशासन बन।
सावधान! दर्प में न बहो
बंद कर दो यह अंधा कौरवराज
इससे पहले कि
विद्रोह कर उठें पेड़,
तुम डालते रहो बीज पर बीज
पर वो न उगें।

91, जवाहर नगर,
सवाई माधोपुर (राज.)-322001

धरती का रक्षा कवच - ओज़ोन परत - एक संत्रास

कु० पुष्पा अग्रवाल

मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदा से ही प्रकृति का दोहन किया है और प्रकृति भी मुक्तहस्त से उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती रही है। किन्तु जब से उसकी आवश्यकताओं ने लालसा का बाना पहना, दोहन की प्रक्रिया में क्रूरता का समावेश हो गया, मित्र प्रकृति तटस्थ और फिर शत्रु बन गई।

विकसित देशों में अनियन्त्रित औद्योगीकरण, हथियारों का असीमित निर्माण, विभिन्न परमाणुविक परीक्षण एवं विकासशील देशों में गरीबी, निरक्षरता और बढ़ती हुई जनसंख्या का दबाव इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं।

पर्यावरण प्रदूषण का जन्म उस दिन हुआ जिस दिन मनुष्य ने पहली बार आग जलाई। भोजन बनाने के लिए चाहे लकड़ी जलाई जाए या उपले, मिट्टी का तेल हो या गैस, दूरियों को तय करने के लिए पेट्रोल का प्रयोग किया जाए या डीजल का, उससे निकली दूषित गैसें वायुमंडल में ही समाती हैं। इतना ही नहीं आज तो उद्योगों की चिमनियां लगातार ज़हर उगलती रहती हैं और निरीह मनुष्य इसी मीठे ज़हर को पीने के लिए विवश है।

ओज़ोन के निर्माण में तीव्रता

आज का विश्व ओज़ोन की परत के सम्बन्ध में संत्रस्त है। पृथ्वी के वायुमंडल में ओज़ोन नामक गैस प्राकृतिक रूप में मिलती है। यद्यपि यह गैस धरती की सतह से लेकर 60 किलोमीटर ऊंचाई तक मिलती है तथापि इसकी सबसे अधिक मात्रा बीस-पच्चीस किलोमीटर की ऊंचाई पर होती है। वायुमंडल में इसकी मात्रा बहुत ही कम होती है। हवा में उपलब्ध एक लाख अणुओं में से केवल एक अणु ओज़ोन का होता है। यदि वायुमण्डल में स्थित कुल ओज़ोन गैस को धरती पर बिछा दें तो केवल तीन मिलीमीटर ऊंची परत बनेगी। इतनी कम मात्रा होते हुए भी यह गैस बहुत ही महत्वपूर्ण है और आज सारे संसार की चिन्ता का विषय बनी हुई है।

रसायन शास्त्र में ओजोन O_3 कही जाती है। यह आक्सीजन का ही एक रूप है। आक्सीजन में आक्सीजन गैस के दो परमाणु होते हैं इसलिए वह O_2 कहलाती है किन्तु ओज़ोन में आक्सीजन के तीन परमाणु होते हैं। पृथ्वी के वायुमण्डल में लगभग 21 प्रतिशत आक्सीजन है। ओज़ोन हानिकारक गैस है। धरती के निकट इसकी अधिक मात्रा क्या जीव जन्तु और क्या वनस्पति सभी के लिए बहुत ही हानिकारक है। किन्तु 20-25 किलोमीटर पर मिलने वाली इसकी परत अनेक रूपों में लाभप्रद है। आक्सीजन और ओज़ोन की परिवर्तन प्रक्रिया में एक प्रकार का संतुलन होता है। परिणामतया ओज़ोन न बहुत अधिक मात्रा में वायुमंडल में बनती है और न ही समाप्त होती है। इसकी रचना में सूर्य के प्रकाश के साथ आने वाली ऊर्जा ही आक्सीजन को ओज़ोन में बदलती है। आक्सीजन को ओज़ोन में बदलने लिए अत्यधिक ऊर्जा अपेक्षित है। क्योंकि वायुमण्डल के ऊपरी भाग में सूक्ष्म तरंगों के रूप में यह ऊर्जा सूर्य से पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती रहती है अतः परमाणुविक आक्सीजन (O), आक्सीजन के सामान्य परमाणु (O_2) से मिलकर ओज़ोन ($O + O_2 = O_3$) की रचना करता है।

ओज़ोन परत में छेद

वायुमण्डल के ऊपरी भाग में इस प्रतिक्रिया के होने का एक कारण पराबैंगनी किरणों द्वारा इस प्रतिक्रिया को सतत बनाए रखने के लिए उपलब्ध होने वाली अति ऊर्जा है और इसके निर्माण के लिए दूसरा कारण है आक्सीजन के सामान्य परमाणु एवं परमाणुविक आक्सीजन का उपलब्ध घनत्व। यही कारण है कि एक निश्चित ऊंचाई पर ही वायुमण्डल में ओज़ोन की परत मिलती है। वायुमण्डल के अन्य भागों में इसकी मात्रा प्राकृतिक रूप से नगण्य है। किन्तु आज के युग में बढ़ते हुए औद्योगीकरण, आणविक और रासायनिक युद्धों तथा धुआं उगलते वाहनों के कारण हमारे आसपास ओज़ोन निर्माण की प्रक्रिया तीव्र हो गई है।

पिछले दशक से यह अनुभव किया जा रहा है कि अधिकांशतया शहरों में शाम के समय वातावरण में धुआं सा छाया रहता है और यदि आसपास ऊंचे ऊंचे भवन हों और गाड़ियों की आवाजाई भी अधिक हो तो यह धुआं और भी सघन हो जाता है--जिससे कभी-कभी तो सांस लेना भी कठिन प्रतीत होता है और शरीर की शक्ति जैसे चूक जाती है। यह सघन धुआं ही धूम-कोहरा कहलाता है। इसके बनने में सूर्य के प्रकाश की अहम भूमिका होने के कारण ही यह शाम को दिखाई देता है। क्योंकि जब पेट्रोल जलता है तो केवल जल और कार्बन-डाई-आक्साइड ही नहीं बनते वरन जलने से बचे हुए हाइड्रो कार्बन निकास द्वार से बाहर आ जाते हैं। इधर हवा में स्थित नाइट्रोजन इंजन में

आक्सीकृत होता रहता है। इसके कारण नाइट्रोजन के आक्साइड बनते हैं जैसे–NO, NO_2, NO_3 आदि। जलने से बचे ये नाइट्रोजन आक्साइड सूर्य किरणों से ऊर्जा प्राप्त करके प्रतिक्रिया करते हैं। इनसे कई प्रकार के यौगिक बनते हैं। इन यौगिकों में एलडीहाइड और कीटोन प्रमुख है। इनसे बाद में (पेरोक्सी-एसीटाइल नाइट्रेट्स) (Peroxy-Acetyle - Nitrates) यानी पैन नामक एक और यौगिक बनता है। इससे वायुमण्डल में छोटे-छोटे कण या बूंदें बनती हैं। यही बूंदें वायुमंडल में धूम कोहरा के रूप में दिखती हैं। "पैन" के साथ ही ओज़ोन भी बनती है। किन्तु वायुमण्डल के निचले भाग में बनी यह ओज़ोन 20-25 किलोमीटर की ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाती। धरातल के आसपास ही केन्द्रित रहती है तथा जीव जगत और वनस्पति को कई प्रकार की हानियां पहुंचाती है। यही ओज़ोन जो धरातल के पास रहने पर अपनी सघनता के कारण अति हानिकारक दमघोटू और प्राणलेवा भी है वही स्ट्रैटोस्फीयर (20-25 किलोमीटर की ऊंचाई) में अपनी सघन परत के कारण धरती पर रहने वाले जीव जगत और वनस्पति के लिए रक्षा कवच का काम करती है। यहां ओज़ोन परमाणुओं का बनना और टूटना दोनों प्राकृतिक क्रियाएं हैं। जितने परमाणु टूटते हैं उतने ही स्वतः बन भी जाते हैं। इस प्राकृतिक क्रिया से तो कोई अन्तर नहीं पड़ता परन्तु मानव के विकास की अन्धाधुन्ध दौड़ और भौतिक सुख साधनों की प्राप्ति के नित नए प्रयोगों के फलस्वरूप पर्यावरण सम्बन्धी असंतुलन की समस्या जटिल से जटिलतर बनती जा रही है। आज ओज़ोन परत को लेकर जो सारा संसार चिन्तित है उसका कारण पिछले दशकों के दौरान इसका पतला पड़ जाना और एक स्थान से फट जाना भी है। यद्यपि स्ट्रैटोस्फियर में हर स्थान पर ओज़ोन की मात्रा में कमी आई है तथापि दक्षिण ध्रुव प्रदेश के वायुमण्डल को सर्वाधिक क्षति पहुंची है। सर्वप्रथम वर्ष 1985 में अंटार्कटिका के ऊपर की ओज़ोन परत में दरार देखी गई थी। दरार का क्षेत्रफल अमरीका के क्षेत्रफल के बराबर है। 1988 में यह ज्ञात हुआ कि ओज़ोन की मात्रा में 40 से 50 प्रतिशत तक कमी आई है। यदि इस पर अभी अंकुश नहीं लगाया गया तो यह और भी बढ़ जाएगी।

ओज़ोन परत के पतला होने के दुष्परिणाम

यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो ओज़ोन परत के पतले पड़ने और उनमें दरार आने से उत्पन्न समस्या मानव जनित है। ओज़ोन परत की इस स्थिति के लिए क्लोरो-फ्लोरो कार्बन भी एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी हैं। वर्ष 1920 में मानव ने इस यौगिक को बनाया था। इसी का एक रूप फ्रओन ($CFCl_3$) है। वर्ष 1920 के बाद इस यौगिक का बड़ी तेजी से उपयोग होने लगा। आज हम सभी इसका प्रयोग करते हैं। एरोसोल डिब्बों और बोतलों में यही भरा रहता है - जिससे फुहार बनती है–जैसे कि सैन्ट की बोतलें, रंग के डिब्बों, दाढ़ी बनाने के बाद उपयोग में आने वाले लोशन आदि। अब तो जूते की पालिश और कीटनाशकों में भी इसका प्रयोग होने लगा है। इसका बहुत बड़ा उपयोग प्रशीतन (एयर कूलिंग) में है। यह गैस एयर-कंडीशनर, रेफ्रीजरेटर इत्यादि के काम में आती है। रबर और फोम के गद्दे बनाने में भी इसका प्रयोग होता है। संश्लेषित प्लास्टिक के निर्माण में भी इसका प्रयोग होता है।

क्लोरो-फ्लोरो कार्बन का जब प्रयोग किया जाता है तो यह हल्की होने के कारण वायुमण्डल में ऊपर पहुंच जाती है और स्ट्रैटोस्फियर में पहुंचकर इसके परमाणु टूट जाते हैं उसमें से क्लोरिन के परमाणु अलग होकर ओज़ोन को आक्सीजन में बदल देते हैं। इस प्रकार जितनी मात्रा में सी. एफ. सी. वायुमण्डल में जाएगी उतनी ही अधिक मात्रा में ओज़ोन समाप्त होगी। ओज़ोन परत के रक्षा कवच को और न छीजने देने के विचार से 1987 में मान्ट्रियाल, कनाडा में हुए समझौते पर 24 देशों ने हस्ताक्षर किए थे जिसमें प्रधान रूप से सी. एफ. सी. के उत्पादन में 35 से 50 प्रतिशत तक कमी करने का प्रावधान था। इसके लिए आवश्यकता है सी. एफ. सी. का विकल्प खोजने की। जो सस्ता हो और इसका स्थान ले सके। अन्यथा यह ग्रीन हाऊस प्रभाव बढ़ता रहेगा और ओज़ोन परत पर खतरा गहराता जाएगा। ओज़ोन परत धरती पर रहने वाले जीवों एवं वनस्पतियों के लिए कुछ ऐसे कार्य करती है जो अन्य किसी के लिए असम्भव है। यह एकमेव अद्वितीय है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक अन्तर्राष्ट्रीय पेनल की रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर इसे नियंत्रित नहीं किया गया तो मानव जाति को भयावह परिणाम झेलने पड़ेंगें। धरती की ओर आती सूर्य की किरणों में पराबैंगनी किरणें बहुत अधिक मात्रा में होती हैं जो बहुत ही हानिकर हैं। यदि ये अपनी पूरी मात्रा में धरती पर आ जाएं तो सबसे पहले तो धूप बहुत तेज हो जाएगी। तापमान असह्य हो जाएगा। वनस्पतियां, जीव-जन्तु झुलस जाएंगे। आंखें खराब हो जाएंगी, शरीर पर झुर्रियां पड़ जाएंगी–और अनेक प्रकार के चर्म रोग हो जाएंगे। त्वचा का कैंसर बहुत तेजी से फैलेगा। बुढ़ापा जल्दी आएगा। रोगों से लड़ने की शक्ति नष्ट हो जाएगी। पेड़-पौधों की प्रकाश संश्लेषण (फोटोसिन्थेसिस) की क्रिया प्रभावित होगी। कृषि पण्यों की उपलब्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। बीज के अंकुरण और विकास की क्रिया धीमी पड़ जाएगी। अंकुर ही झुलस जाएंगे। धरती पर उगी हर वस्तु आग से झुलस गई लगेगी। अंकुर न पेड़ पौधे बनेंगे न दाना चारा मिलेगा। समुद्रों में मछलियां कम हो जाएंगी। आकाश आग उगलेगा। दक्षिण पूर्वी ब्रिटेन, हालैण्ड, बंगलादेश

के अस्सी नब्बे लाख लोगों को तटवर्ती स्थानों से और कहीं व्यवस्थित करना होगा। भीषण बाढ़ें और आंधी तूफान आएंगे। फसलों की पैदावार गिर जाएगी। भूमध्य सागरीय देश पानी की कमी के कारण अर्ध-मरुस्थल बन जाएंगे। दक्षिणी अमरीका सूखे से पीड़ित होगा। अफ्रीका और आसपास के देशों में भूखमरी और महामारी बढ़ जाएगी। नदियां सूख जायेंगी। कनाडा की झीलें सूख कर लगभग आठ इंच नीचे चली जाएंगी। प्रचण्ड गर्मी से पहाड़ों और ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ तेजी से पिघलेगी। बर्फ के बड़े-बड़े खंडों के गिरने से भूकम्प आएंगे। सोये हुए ज्वालामुखी भी जाग सकते हैं। शाश्वत हिमखंडों के पिघलने से नदियों, झीलों और सागरों में जलस्तर बढ़ जाएगा और धरती का एक बड़ा भाग जल मग्न हो जाएगा।

वास्तव में ओज़ोन परत पराबैंगनी किरणों को चूस लेती है। यह एक प्रकार से फिल्टर का काम करती है जो पराबैंगनी किरणों को ऊपर ही रोक लेती है। इस परिस्थितिजन्य संकट से बचने के लिए कटिबद्ध होकर काम करने की आवश्यकता है अन्यथा खण्ड प्रलय निकट ही है।

ए-25 बी दूसरी मंजिल,
जंगपुरा एक्टेंशन नई दिल्ली

सफलता की कहानी

भेड़ और चारा विकास कार्यक्रम : किसानों की दृष्टि में

मट्टु सौंधी

राजस्थान की अर्थ व्यवस्था में भेड़ों के विशिष्ट महत्व को देखते हुए इस क्षेत्र में अनुसंधान हेतु वर्ष 1962 में केंद्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई। यह संस्थान भेड़ पालकों की समस्याओं के समाधान के लिये शोध कार्य में संलग्न है। संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में प्रमुख है अनुसंधान के परिणामों को भेड़-पालकों तक पहुंचाना जिससे वे इनका लाभ उठा सकें।

किसानों के साथ सीधे कार्य करने के कार्यक्रम का एक सफल उदाहरण है टोंक जिले का मालपुरा खंड एवं अजमेर का अराई खंड जहां के गांवों में भेड़पालकों का सर्वेक्षण किया गया।

इस सर्वेक्षण के लिये 20 गांव चुने गए जिनमें लगभग 200 भेड़ पालक तथा 20,000 भेड़ें थी। सर्वेक्षण से पता चला कि इस क्षेत्र में ज्यादातर मालपुरा नस्ल की भेड़ें हैं जिनका ऊन उत्पादन लगभग 800 ग्राम प्रतिवर्ष है, भेड़ों में मृत्यु दर 19 प्रतिशत थी। भेड़े अधिकतर चरागाह पर ही निर्भर थीं।

चारा वृक्ष बहुत ही कम थे जिसमें खेजड़ी प्रमुख था। इन हालात को देखकर नस्ल सुधार, स्वास्थ्य परिचय, चारा उत्पादन तथा पोषण कार्यक्रम लेकर प्रसार कार्य प्रारंभ किया। प्रसार कार्य की विशेषता यह थी कि गांवों में ही संस्थान के प्रसार केंद्र खोले गये तथा वहां वैज्ञानिकों ने पूरे मनोयोग से भेड़ पालकों की सामयिक समस्याओं का अध्ययन किया तथा सुधार के लिए आवश्यक कार्यक्रम शुरू किए।

भेड़ स्वास्थ्य कार्यक्रम में आशातीत सफलता मिली है। रोगों की रोकथाम के लिए एक वार्षिक कैलंडर तैयार किया गया जिसके अनुसार फड़किया तथा माता रोग की रोकथाम के लिए प्रतिवर्ष टीके लगाये गये तथा आंतरिक परजीवियों की रोकथाम के लिए वर्ष में तीन बार दवाई पिलाई गई। इससे पशु स्वस्थ रहने लगे तथा पशुओं का भार भी बढ़ गया। मृत्युदर 19 प्रतिशत से कम होकर आठ प्रतिशत रह गई। इससे किसान की आय में 10-12 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई। किसानों को चारा वृक्ष लगाने के लिए लगभग 1,00,000 पौधे दिये गये जिनमें से लगभग 30 प्रतिशत जीवित हैं और इनसे भेड़ों को चारा मिलता है।

इस कार्यक्रम से लाभान्वित होने वाले किसानों ने बताया कि प्रसार कार्यक्रमों के तहत मिलने वाली सुविधाओं से अब उनकी ऊन की पैदावार बढ़ गई है तथा आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आजकल उनकी भेड़ों से बढ़िया किस्म की ऊन मिलती है और जानवरों के भार में वृद्धि भी हुई है।

इस कार्यक्रम का विशेष अंग भेड़ पालन शिक्षा का भी रहा है। भेड़ पालकों को अब रोगों और टीकों के बारे में तथा आंतरिक परजीवियों की रोकथाम की दवाइयों के बारे में जानकारी है और वे चारा वृक्ष और चारा उत्पादन के बारे में जागरूक हैं तथा यह जानकारी दूसरे गांवों के भेड़ पालकों को भी देते रहते हैं।

क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी,
जयपुर

पर्यावरण चेतना और युवा वर्ग

✍ मोहन नायक

आज पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या दिनोंदिन गंभीर होती जा रही है। मानव-जाति के इतिहास में समूचे विश्व के सामने इस तरह के अस्तित्व संकट का खतरा पहले कभी नहीं आया। प्रगति के नये सोपान चढ़ने के उत्साह में मानव प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति लापरवाह हो गया और तात्कालिक लाभों के लालच में उसने अपने भविष्य को दीर्घकालीन संकट में डाल दिया। परिणामस्वरूप आज अनेक प्राणियों और पौधों के लोप होने की आशंका उत्पन्न हो गई है। गांधी जी ने कहा भी था "प्रकृति के पास मानवता की आवश्यकता पूर्ण करने के साधन हैं, लोलुपता के नहीं।"

प्रकृति की इस विनाश लीला अर्थात पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति पर काबू पाना अत्यावश्यक हो गया है। इस दिशा में सरकार द्वारा प्रयास जारी हैं मगर जन सहयोग के बिना इस उद्देश्य में अपेक्षित सफलता मिलना कठिन है।

पर्यावरण और प्रदूषित करने वाले कारक

प्रकृति तथा मानव निर्मित जो भी चीजें हैं वे सब मिलकर पर्यावरण बनाती हैं। वह चाहे मिट्टी, पेड़-पौधे या जीव-जन्तु हों, इसके अलावा भी सभी कुछ पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं। इन सभी चीजों के आपसी तालमेल से ही पर्यावरण संतुलित रहता है। पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाने पर पूरे जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किसी न किसी तरह से सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। इसलिए पर्यावरणीय परिस्थितियों का संतुलन और अनुकूलन होना आवश्यक है। किन्तु दिनोंदिन पर्यावरण का संतुलन बिगड़ता जा रहा है और इसका प्रभाव विश्व के सभी देशों में देखने में आ रहा है।

पर्यावरण को प्रदूषित करने में विश्व की लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या, वनों का विनाश, आणविक आविष्कार और उद्योग धंधे, नदियों तथा तालाबों के जल में गिरता कूड़ा-कचरा, खेती में रसायनों के असंतुलित प्रयोग आदि की महत्वपूर्ण भूमिका है। इन्हीं के कारण ही जल, वायु, ध्वनि, भूमि एवं अन्य तरह का प्रदूषण फैल रहा है।

पर्यावरण प्रदूषण का प्रभाव

पर्यावरण प्रदूषण को आधुनिक युग का सबसे बड़ा अभिशाप कहें तो अतिशियोक्ति नहीं होगी। धरती पर जल की उपस्थिति से ही जीवन है। यही कारण है कि दूसरे ग्रहों पर जल के अभाव में जीवन का अस्तित्व ही नहीं है। आज विभिन्न उद्योगों एवं कचरे से जल प्रदूषण की समस्या भयानक रूप धारण करती जा रही है। वैज्ञानिकों के अनुसार 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है। इस प्रदूषित जल के सेवन से पेचिश, हैजा, पीलिया आदि रोग फैलते हैं। जल प्रदूषण से विश्व में प्रतिदिन 25,000 से अधिक लोगों की मृत्यु हो जाती है।

इसी तरह वायु भी जिसकी उपस्थिति के बिना जीवन संभव नहीं है प्रदूषित है। इसके प्रदूषण से लाखों-करोड़ों मनुष्यों और जीवों के स्वास्थ्य और जीवन के लिए खतरा है। दिसम्बर 1952 में घटित लंदन के "ब्लैक फाग" (काला कोहरा) ने 4000 व्यक्तियों की जान ली। इसका कारण सल्फर डाई आक्साइड गैस रही। इसी तरह भारत में ही दिसम्बर 84 में घटित भोपाल गैस काण्ड भी इसका एक उदाहरण है। इसमें यूनियन कार्बाइड कारखाने से 40 हजार कि. ग्रा. "मिक" गैस के रिसाव से 2500 व्यक्ति मौत के मुंह में समा गए और हजारों व्यक्ति इससे आज तक प्रभावित हैं। इसके अलावा वायु प्रदूषण से खांसी, दमा ब्रान्काइटिस, फेफड़े का कैंसर, हृदय रोग आदि हो जाते हैं। इसका प्रभाव मनुष्य के अतिरिक्त सभी जीव-जन्तुओं, पेड़-पौधों और इमारतों (विशेषकर ऐतिहासिक इमारतों) पर भी पड़ता है इसीलिए आगरा जैसे शहरों में प्रदूषण रहित उद्योग लगाने का प्रावधान है। परन्तु इस नियम का कड़ाई से पालन न होने से आगरा के ताजमहल पर प्रदूषण का प्रतिकूल असर पड़ रहा था। इस कारण से न्यायालय ने ऐसे कई उद्योगों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

आज आधुनिक आविष्कार और औद्योगीकरण के कारण यंत्रों, वाहनों और मशीनों इत्यादि से ध्वनि प्रदूषण हो रहा है। 85-90 डेसीबल तक शोर को वैज्ञानिक श्रवण के लिए उचि

मानते हैं। इससे अधिक होने पर श्रवण-शक्ति कम होने, मानसिक अव्यवस्था, तनाव, अनिद्रा, हृदय रोग आदि हो सकते हैं। इसी तरह रेडियोधर्मी प्रदूषण का भी सभी तरह से घातक प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के रसायनों और कीटनाशकों से भूमि प्रदूषण होता है जबकि आज कीटनाशकों और रसायनों का प्रयोग दिनोंदिन बढ़ रहा है। पिछले 40 वर्षों में दस हजार नये रासायनिक पदार्थों का निर्माण शुरू हुआ है। इनमें 80 प्रतिशत के दुष्प्रभावों की हमें जानकारी नहीं हो पायी है। भारत में 4000 के करीब रासायनिक उद्योग हैं और ये उद्योग सबसे खतरनाक हैं। इसीलिए कीटनाशकों की दुर्घटना वाली सूची में भारत विश्व में तीसरे स्थान पर है। सन् 1980 में इस तरह के उद्योग से 10 हजार से अधिक श्रमिक घायल हुए और इनमें सौ लोगों की मृत्यु हो गई। इससे लकवा, रतौंधी आदि बीमारियां भी होती हैं। इसके अलावा असमय मौसम के परिवर्तन या असन्तुलन होने का कारण भी पर्यावरण प्रदूषण ही है। पूरे विश्व का पर्यावरण एक है। यदि कहीं भी पर्यावरण संतुलन बिगड़ता है तो उसका प्रभाव सभी देशों पर पड़ता है। इसलिए यह सोचना गलत होगा कि किसी अन्य देश में पर्यावरण को होने वाली हानि का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

पर्यावरण संतुलन में वृक्षों का महत्व

आज बढ़ती जनसंख्या एवं औद्योगीकरण के कारण दिनोंदिन वनों का विनाश हो रहा है। प्रतिवर्ष 47,500 हेक्टेयर वन क्षेत्र कटाई के कारण नष्ट हो रहा है जबकि विश्व की अत्यधिक जनसंख्या को देखते हुए वृक्षों की कटाई के बजाय बढ़ोत्तरी करना आवश्यक है। क्योंकि पर्यावरण की सुरक्षा में पेड़-पौधों का बहुत महत्व है और वे मनुष्य के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक सभी पहलुओं के साथ जुड़े हैं। प्राचीन काल से ही मनुष्य वृक्षों को पूजता आया है। महाभारत में 'अनुशासन पर्व' में लिखा है :–

"तस्य पुत्रा भवन्त्येते पादपा नात्रसंहायः
परलोक गतः स्वर्गे लोकांश्चान्योति सोऽव्ययान्।।"

अर्थात् "जो वृक्ष लगाता है उसके लिए ये वृक्ष पुत्र रूप होते इसमें संशय नहीं है। इन्हीं के कारण परलोक में उसे स्वर्ग तथा अक्षय लोक प्राप्त होते हैं।" इस तरह प्राचीन ग्रंथों से वनों की महिमा का पता चलता है। चाहे वाल्मीकि रामायण हो या कालिदास के काव्य ग्रंथ, तुलसीदास का रामचरितमानस हो या रवीन्द्रनाथ का साहित्य सभी में वनों की उपयोगिता को सिद्ध करने वाले तथ्य भरे हैं। तात्पर्य यह कि वृक्ष और जीव जन्तुओं का जीवन एक दूसरे पर निर्भर है। वृक्षों से ही प्राण, वायु, औषधि और फल प्राप्त होते हैं, लेकिन वृक्षों की लगातार कटाई से विश्व के सामने एक समस्या खड़ी हो गई है।

पर्यावरण संरक्षण के लिये किये जा रहे प्रयास

स्वच्छ और संतुलित पर्यावरण के लिए भूमि का एक तिहाई भाग वनों से ढका होना चाहिए जो कि भारत में 15 प्रतिशत ही है। ऐसे में वनों की हर कीमत पर रक्षा की जानी चाहिए। भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था कि "यह बड़े दुख की बात है कि एक के बाद दूसरे देश में प्रगति का अर्थ प्रकृति का विनाश माना जाने लगा है। जनता को अच्छी विरासत से दूर किये बिना और प्रकृति के सौंदर्य, ताजगी और शुद्धता को नष्ट किये बिना ही मनुष्य के जीवन-स्तर में सुधार किया जाना चाहिए।"

आज पर्यावरण की बिगड़ते स्थिति के लिए विश्व के सभी देश चिंतित हैं। भारत में पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम के लिए पिछले एक दशक से गंभीर और संगठित उपाय किये जा रहे हैं। जल, वायु तथा ध्वनि आदि के प्रदूषण नियंत्रण के लिए कुछ कानून बनाये गये हैं। जैसे–जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1974, जल कर अधिनियम 1977, वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1981 तथा पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम 1986। हाल के वर्षों में इन अधिनियमों में कुछ संशोधन कर संरक्षण उपायों को और कारगर बनाया गया है। प्रदूषण पैदा करने वाले करीब 4000 बड़े और मझोले उद्योगों में से आधे से अधिक में प्रदूषण नियंत्रण उपकरण लगा दिये गये हैं तथा मानकों की सूचना उद्योगों को जारी कर दी गई है और अब तक इन कानूनों का उल्लंघन करने वाले उद्योगों के विरुद्ध लगभग हजारों आरोप दाखिल हुए हैं।

सन् 1952 में अपनायी गई राष्ट्रीय वन नीति का उद्देश्य है देश के एक तिहाई भाग को वन क्षेत्र के अन्तर्गत लाना। इसी तरह वनारोपण को प्रोत्साहन देने के लिए ही सन् 1985 में 'राष्ट्रीय परती भूमि विकास बोर्ड' कायम किया गया। इसका उद्देश्य जन सहयोग लेकर ईंधन तथा चारे के लिए हर वर्ष 50 लाख हेक्टेयर

परती भूमि में पौधे उगाना था। 1988 में बनायी गई राष्ट्रीय वन नीति में वनों के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है और वनों की अंधाधुंध कटाई पर अंकुश लगाया गया है। इन सब प्रयासों के अलावा और भी कई नियम-कानून बनाये गये हैं। इसके अलावा पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अनुसंधान और विकास की विभिन्न गतिविधियां चलाये जाने के अलावा संबंधित लोगों के लिए प्रशिक्षण और शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। राज्य वन सेवा कालेज, वन रेंजर कालेज, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वन अकादमी और भारतीय वन प्रबंध संस्थान वन कर्मियों को वन प्रबंध के विभिन्न पहलुओं के बारे में प्रशिक्षण देते हैं। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने प्राथमिक और हाई स्कूल के स्तर के पर्यावरण सम्बन्धी अध्याय तैयार कर उन्हें पाठ्यक्रमों में शामिल किया है तथा अनेक विश्वविद्यालयों ने पर्यावरण विज्ञान के स्नातकोत्तर पाठयक्रम शुरू कर दिये हैं। इसके अतिरिक्त पर्यावरण संरक्षण के कार्य में सहभागिता को प्रोत्साहन देने के लिए कई महत्वपूर्ण पुरस्कार एवं सम्मान देने का प्रावधान है।

पर्यावरण चेतना और युवा वर्ग की भूमिका

सरकार द्वारा बनायी नीतियों पर अमल कराना जन सहयोग के बगैर संभव नहीं है। इसके लिए लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना जगाना बहुत जरूरी है क्योंकि आमतौर पर यह देखा गया है कि सरकार द्वारा बनाई गई पर्यावरण सम्बन्धी प्रभावी नीतियों को लोग सैद्धांतिक रूप में स्वीकारते हैं मगर व्यावहारिक धरातल पर उनका पालन नहीं होता। जिससे लोग अपने आसपास के परिवेश के प्रति उदासीन रहते हैं और अपेक्षित कदम नहीं उठाते। इस दिशा में लोगों में जागरूकता लाने में युवाओं की भूमिका प्रभावी हो सकती है। क्योंकि आज तक जहां कहीं भी नवनिर्माण का सृजन हुआ है, युवा हाथों से ही हुआ है। युवा शक्ति का अंदाजा तो स्वामी विवेकानंद जी के इस कथन से भी लगाया जा सकता है कि "यदि मुझे सौ समर्पित युवक मिल जाते तो मैं देश का कायाकल्प कर सकता हूं।" फिर वर्तमान भारत के लगभग 70 प्रतिशत लोग 35 वर्ष से कम आयु के हैं। अतः भारत को एक युवा राष्ट्र माना जा सकता है और यहां की विभिन्न गतिविधियों में युवाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रहनी चाहिए। युवाओं के सक्रिय प्रयास से पर्यावरण समस्या से निजात पाना कठिन नहीं है। युवा गांव-गांव, नगर-नगर जाकर लोगों को पर्यावरण के खतरे से अवगत करा सकते हैं, लोगों को व्यक्तिगत दायरे से ऊपर उठाकर सामाजिक दायित्व का कर्त्तव्य-बोध करा सकते हैं। वास्तव में पर्यावरण विघटन का मूल कारण लोगों का बदलता हुआ सोचने-विचारने का ढंग है। हम गलत कार्य के लिए दूसरों को जिम्मेदार ठहराते हैं तथा अपनी जिम्मेदारी को भूल जाते हैं। लेकिन लोगों की छोटी-मोटी गलतियां ही प्रदूषण बढ़ा रही हैं, लोग अपने घर का कूड़ा अपने आंगन या नाली में ही फेंक देते हैं, सार्वजनिक उद्यान या खेल परिसर आदि का भी ऐसा उपयोग किया जाता है। गांव में खुले जगहों में जहां बना शौच कर देते हैं वहीं नगरों में नालियों में शौच कर उन्हें गंदा कर देते हैं।

भौतिक विलासिता को त्यागने की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए बहुत कम दूरी के लिए भी लोग वाहन का प्रयोग इसलिए करते हैं कि डीजल, पेट्रोल के खर्चे की उन्हें चिंता नहीं रहती। विद्युत का उपयोग भी हम अधिक से अधिक करते हैं लेकिन यह भूल जाते हैं कि विद्युत उत्पादन में कितना पर्यावरण प्रदूषण होता है? लोगों को अपने दायित्वों का बोध कराने में युवाओं की ही भूमिका प्रभावी हो सकती है। युवाओं में अपने साथ-साथ समाज और राष्ट्र के लिए भी समय देने और कुछ करने की भावना रहती है। युवा संगठित होकर सार्वजनिक स्थलों की सफाई, वृक्षारोपण और साक्षरता कार्यक्रम चलायें तो इसमें उन्हें सफलता मिलेगी और उनके निःस्वार्थ सेवा भाव से प्रेरित होकर लोग अपनी गलती का अहसास तो करेंगे ही साथ ही साथ अपने घर आंगन आदि में पेड़-पौधे और बागवानी लगायेंगे। गांवों के लोगों में अगर जागरूकता आ गई तो वे अपने खेतों में वृक्षारोपण कर सकते हैं। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई एवं कीटनाशकों के अधिक इस्तेमाल से पड़ने वाले दुष्प्रभाव को भी वे समझेंगे।

उद्यमी जो लाखों करोड़ों रुपये अपने उद्योग में लगाता है लेकिन साथ ही शुद्धिकरण संयंत्र नहीं लगाता, क्योंकि उसका उद्देश्य धन अर्जन करना होता है, उसे पर्यावरण संरक्षण की कोई चिन्ता नहीं रहती। ऐसे उद्यमियों को बदले में वृक्षारोपण करने की शर्त रखी जा सकती है। लोगों में पर्यावरण के प्रति चेतना जगाने के लिए पर्यावरण वाहिनी, पर्यावरण संरक्षण दल आदि का गठन किया जा रहा है। इसमें भी जुड़कर या सहयोग लेकर युवा पर्यावरण सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, और अगर युवा संगठित हों तो यह एक आन्दोलन का रूप धारण कर सकता है। पर्यावरण की सुरक्षा हेतु समाजसेवी गौरादेवी और सुन्दरलाल बहुगुणा द्वारा चलाया गया 'चिपको आन्दोलन' इसका

एक उदाहरण है। युवाओं को भावी पीढ़ी के लिए एक उपकृत कार्य 'पर्यावरण क्रांति आन्दोलन' के रूप में समूचे विश्व में छेड़ देना चाहिए। इसमें सभी देशों के युवाओं या सरकार का समर्थन मिलने की पूरी उम्मीद है। इस दिशा में भारत के युवाओं द्वारा ही अगर पहल की जाए तो भारत के लिए यह गौरव की बात होगी।

सरकार द्वारा पर्यावरण के सुधार में लगे युवाओं के लिए प्रोत्साहन योजना बनायी जानी चाहिए। उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में प्राथमिकता देनी चाहिए और पर्यावरण संरक्षण के लिए किये जाने वाले उनके प्रयासों में राजनीतिज्ञों, अध्यापकों, छात्रों, पत्रकारों, मीडिया, पर्यावरण विशेषज्ञों तथा जागरूक शहरी एवं ग्रामीण महिलाओं का सहयोग मिलना चाहिए। अगर मन, वचन और कर्म से, इनका युवाओं को सहयोग मिला तो इसमें संदेह नहीं कि युवा इस धरती पर स्वर्ग का निर्माण कर सकते हैं।

जन सामान्य की भागीदारी

पर्यावरण की समस्या किसी व्यक्ति, किसी गांव, किसी नगर या किसी देश विशेष की समस्या नहीं है अपितु यह एक मात्र ऐसी समस्या है जिसका समूचे विश्व को दुष्परिणाम भुगतना पड़ रहा है। इसके समाधान के लिए विश्व के सभी देश प्रयासरत हैं, फिर भी औद्योगिक विकास, नगरीकरण, वनों का विनाश और आबादी में दिनोंदिन बढ़ोत्तरी होने के कारण यह समस्या निरंतर गंभीर होती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक संस्थाओं जैसे विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व पर्यावरण संस्थान, अन्तर्राष्ट्रीय वन्य संरक्षण संस्थान ने प्रदूषण की समस्या को हल करने के प्रयास किये हैं मगर अब तक संतोषजनक सफलता नहीं मिली है। इसलिए इसमें जन-सामान्य की भागीदारी जरूरी है। अपने लिए, अपने समाज के लिए, अपने राष्ट्र के लिए और संपूर्ण विश्व के "वसुधैव कुटुम्बकम्" के नाते प्रदूषण के प्रति जागरूकता पैदा करने के लिए जन आन्दोलन छेड़ने की आज अत्यधिक आवश्यकता है।

मु. पो. देवगांव, सरिया,
जिला–रायगढ़ (म.प्र.),
पिन–496554

(पृष्ठ 2 का शेष)

पाठकों के...

मार्च 95 में "ग्रामीण विकास के लिए समर्पित प्रयास की आवश्यकता" के महत्व पर चर्चा की गई थी। काफी रोचक एवं लाभप्रद विवरण प्राप्त हुआ है।

हालांकि गांव की स्थिति में पहले से कुछ सुधार हुआ है। किंतु समस्याएं आज भी अपने जगह स्थिर प्राय हैं। आंकड़ों और असलियत में काफी भिन्नता है। भारत के कुछ राज्यों की स्थिति अवश्य काफी अच्छी है, परंतु केवल कुछ राज्य ही समग्र भारतीय स्वरूप को परिवर्तित करने में सक्षम नहीं है।

आज भी हमारे समक्ष बिहार और उड़ीसा जैसे राज्यों की एक लंबी सूची है जिसके किसान व मजदूर जातीय समस्याओं में तो उलझे ही हैं साथ ही उन्हें उनकी खेती, जो उनका मुख्य व्यवसाय है, पूरी तरह साथ नहीं देती है। जिससे वे पूर्व की भांति पिछड़े हैं जबकि दुनिया काफी आगे चली गयी है। ऐसी स्थिति में उनके लिए हरियाणा, पंजाब जैसे राज्यों के किसान का मुकाबला कर पाना एक दिवा स्वप्न ही है।

इसलिये आवश्यक है, कि राष्ट्र के संतुलित विकास के लिए विकसित राज्यों को तात्कालीन विशेष सुविधा से विराम देकर पूरे मन से इन पिछड़े राज्यों के विकास के लिए प्रयास किए जाएं।

मैं आपके ग्रामीण विकास के प्रयास का सदैव प्रशंसक रहा हूं तथा आशा करता हूं कि आपके दिशा निर्देशन में प्रत्येक माह विकास की चाह वाली साधनहीन ग्रामीण जनता को आवश्यक वैज्ञानिक तथ्य एवं सरकारी मदद के लिए जानकारी प्राप्त होती रहेगी।

यह पत्रिका उनके लिए भी मददगार है जो सक्षम हैं तथा गांव में ही स्वच्छ एवं निर्मल वातावरण मे रहना चाहते हैं।

अलिखेश रंजन,
99, भाई परमानन्द कालोनी,
दिल्ली-9

कहानी

नानकू

✍ महेश चन्द्र जोशी

"उठो। जल्दी उठो?" पत्नी ने घबराए स्वर में मुझे झकोरते हुए कहा।

"क्या है? क्या हुआ?" मैं चौंक उठा।

"नानकू भाग गया।"

"क्या? नानकू भाग गया। क्यों? कहां?"

मैं पलंग से उठा और नानकू के कमरे में गया। चौंक गया, जब देखा कि वास्तव में उसके साथ उसका सामान भी गायब है।

अब रह-रहकर मुझे यह सवाल कचोटने लगा कि नानकू भागा क्यों? कई शंकाएं उभरती रहीं और खत्म होती रहीं।

नानकू से परिचय हुए कुछ महीने ही बीते थे। मैं अपने परिवार के साथ एक गांव से शहर में तबादले पर आया था। गाड़ी से उतरकर प्लेटफार्म से बाहर आया ही था कि एक किशोर के साथ दो-तीन बच्चे-बच्चियों के हाथ हमारी ओर गिड़गिड़ाते स्वर में उठे—"एक रुपया....भूख लगी है....तेरे लाल जीयें.....बस एक रुपया।" मैं चौंका। एक किशोर के पास रुका। पत्नी ने टोका—"इनके चक्कर में मत पड़ो। यह चोर होते हैं। गंदगी के कीड़े हैं, कीड़े।" मैं आगे बढ़ गया। कुछ दूर तक तो वे बच्चे गिड़गिड़ाते हुए हमारे पीछे-पीछे आए, फिर इधर-उधर बादलों की तरह छट गए। मुझे पीड़ा हुई। लगा इनकी भी क्या जिंदगी है। होश संभाला नहीं, लगी पेट की चिंता सताने। क्या सुख देखा इन्होंने? क्या अर्थ समझा जिंदगी का इन्होंने? इसके लिए दोषी कौन?

धर्मशाला आ गई थी। कमरे में सामान रखकर मैं बाहर निकला तो फिर परेशानी ने मुझे आ घेरा। छः वर्ष से चौदह वर्ष तक के बच्चे हाथ फैला रटे-रटाए शब्दों में गिड़गिड़ा रहे हैं। मुझे लगा कि जब एक शहर में इनकी इतनी संख्या है तो पूरे देश में तो न जाने कितनी होगी। ये तो देश के लिए एक बड़ी चुनौती है। इनके कल्याण की ओर ध्यान देना ही चाहिये।

घर मिल गया था। कुछ राहत मिली। लोगों से मिलना-जुलना, घूमना-फिरना बढ़ गया था। पर रह-रहकर मुझे इन भोले-भाले मांगने वालों की समस्या कचोटती रहती। मैं कभी सरकार को और कभी समाज को दोषी मानकर छुटकारा पाने की कोशिश करता रहा। उस दिन मेरी आंखे खुलीं जब एक समाजसेवी मित्र ने कहा—"देखो हम हमेशा एक दूसरे को दोषी ठहरा कर अपने दोषों को छिपाने की कोशिश करते हैं, लेकिन यदि हम जरा बारीकी से सोचें तो हम पाएंगे कि दूसरों से पहले हर बुरे कार्य के लिए हम खुद दोषी हैं।"

एक दिन घर लौटते समय, बाजार में एक किशोर के मेरे सामने हाथ फैलाने पर मैंने उससे कहा—"तुम मेहनत क्यों नहीं करते? भीख मांगना बहुत बुरी बात है।"

"हमें काम मिलता कहां है?"

"काम करो तो क्यों नहीं मिले। चलो मेरे साथ। मेरे घर का काम करना।"

"जी....जी....।" वह सकपकाया। बोला—"मैं फिर चलूंगा।"

"यों कहो कि तुम काम नहीं करना चाहते। भीख मांग कर खाना ही तुम्हारे जीवन का ध्येय बन गया है। बड़ों की नासमझी का फल तुम किशोरों ने भोगा और तुम्हारी नासमझी का फल भोगेंगे ये नन्हें बच्चे।" वह चुपचाप गर्दन झुकाए आगे बढ़ गया। कुछ दिनों बाद जब वही किशोर मुझे मजदूरी करते दिखाई दिया तो मुझे संतोष मिला। मैं उसकी ओर देख कर मुस्कराया और वह मेरी ओर।

मैं घर की ओर जा रहा था कि कोई दौड़ता हुआ मेरे पास आया। मैं चौंका। मुड़ कर देखा तो वही किशोर मेरे सामने खड़ा है। वह हांफ रहा था। मैं आश्चर्य भरे स्वर में बोला—"क्या बात है?"

"साहब...।" मुझे लगा कि वह कुछ कहना चाहता है, पर कह नहीं पा रहा है। मैंने सांत्वना भरे स्वर में उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"घबराओ मत। बोलो, बोलो। क्या कहना चाहते हो?"

वह साहस बटोरकर बोला—"आपने कहा था न....।"

"क्या"?

"कि आप मुझे नौकरी दे देंगे।"

"तुम्हारे दिमाग की काई सचमुच साफ हो गई है।"

वह चुप रहा।

"तो चलो मेरे साथ"

वह मेरे साथ चलने लगा। चुपचाप।

मैंने घर आकर पूछा—"तुम्हारा नाम?"

"नानकू।"

"अच्छा।"

मैं खुशी-खुशी पत्नी से बोला—"देखो आज मैं किसे लाया हूं।"

नानकू की ओर एक उड़ती नज़र डालकर पत्नी नाक-मुंह सिकोड़ती हुई बोली—"कौन है यह?"

"हमारा सहयोगी।"

"कैसा सहयोगी?"

"तुम कई बार कह चुकी थीं कि तुम घर का काम करते-करते थक जाती हो। नानकू घर के काम-काज में तुम्हारा हाथ बंटाएगा।"

"तो तुम इस घर के लिए एक नौकर लाए हो।"

"यही समझ लो।" मैं अपने काम में लग गया। पत्नी ने नानकू को काम बता दिया। फिर मेरे पास आकर धीरे से बोली—"उसकी जात क्या है?"

"इंसान।"

"मजाक मत कीजिए।" पत्नी तुनक कर बोली—"मैं खाने-पीने के कामों में उसे लगाना चाहती हूं।"

"इसमें मजाक की क्या बात है। इंसान के गुणों को देखो। जात-पांत से क्या लेना।"

"गुणों का भी पता चल जाएगा", कहकर पत्नी फुर्ती से लौट गई।

कुछ दिन बीते। नानकू ईमानदारी व मेहनत से संतोषजनक कार्य कर रहा था। पत्नी उसकी कमियों को निकालती रहती। मैं समझाता रहता—"इंसानियत से पेश आओ।" लेकिन उस दिन तो उसका क्रोध सातवें आसमान को छू गया जब उसे पता चला कि नानकू को अपने माता-पिता का पता नहीं है। उस पर गरजने के बाद वह मुझ पर बरसी—"तुम्हें इस दुनिया में सिवाय खोटे सिक्के के और कुछ नहीं मिलता क्या?"

"खोटे सिक्के में खराबी क्या है?" मैं गंभीरता से बोला।

"उसमें खोट मिली है।"

"यदि उसमें से वह खोट निकाल दी जाए, तब तो वह चल जाएगा। नानकू के बारे में शक क्यों है, जबकि उसमें कोई खोट नजर नहीं आती।"

"क्या वह गंदगी में पड़ा हुआ "सिक्का" न था, जिसे तुम उठा लाए?"

"जब नाली में पड़े सिक्के को धोकर हम उसे उपयोगी बना सकते हैं तो गंदगी में पड़े इंसान को उससे अलग कर क्यों नहीं उपयोगी बना सकते? हमें ऐसों के दिलों में विश्वास जमाना चाहिए कि तुम्हारा भी इस दुनिया में कोई है।"

"मेरी समझ में तुम्हारी बातें नहीं आतीं।"

न जाने कितनी बार नानकू को लेकर हम दोनों में झड़पें होती रहीं। मैं जितना नानकू के दिल उदासी को हटाने की कोशिश करता, पत्नी उसे उतना ही उदास बनाने की कोशिश करती। आखिर उस दिन जब वह अचानक घर से गायब हो गया तो हम दोनों एक दूसरे को दोष देने लगे।

करीब-एक साल बीता। मेरा दूसरे शहर में तबादला हो गया। हमने सामान समेटा और गाड़ी पर चढ़ गए। गाड़ी से उतर कर जब हम प्लेटफार्म से बाहर आए तो कोई जाना पहचाना स्वर मेरे कानों से टकराया—"बाबूजी! ओ बाबू साहब!" पलट कर देखा तो चकित रह गया। एक रेस्टोरेंट के काउंटर पर नानकू खड़ा मुस्करा रहा था। मैंने बच्चों को सामान की निगरानी रखने को कहा और पत्नी के साथ नानकू की ओर बढ़ा। उसकी दुकान पर पहुंचने से पहले ही वह हमारे पास आ गया। वह सकुचाता बोला—क्षमा करना बाबूजी! मैं बिना सूचना दिए ही आपके घर से चला आया था।"

"ऐसी क्या मुसीबत आ गई थी जो तुम....?"

"सच पूछो तो अपने जीवन को देखते-देखते मुझे खुद से ही नफरत हो गई थी। मेरा दम घुटने लगा था।"

"अब क्या करते हो?"

"काफी संघर्षों के बाद मैं इस रेस्टोरेंट का मालिक बन गया हूं।" रुक कर उसने फिर कहा—"कुछ देर आप सब यहां बैठिए"

(शेष पृष्ठ 22 पर)

वृक्ष हमारे परम सहयोगी

डा. सीताराम सिंह ''पंकज''

सच पूछिए तो हमारे सौर मंडल में पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है, जो हरा भरा है। पृथ्वी की हरियाली वनों के कारण ही है। वन और वन्य प्राणियों से मानव का बहुत पुराना सम्बन्ध है। गरज यह कि वन हमारी जिन्दगी में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीवित रहने के लिए वृक्ष मनुष्य को प्राणवायु के रूप में आक्सीजन प्रदान करते हैं, आरोग्यता हेतु प्राणदायिनी जड़ी-बूटियां उपलब्ध कराते हैं, क्षुधा शांत करने के लिए सुस्वादु कंद, मूल, फल, आदि वृक्षों की ही देन हैं। इतना ही नहीं, तन ढकने के लिए वस्त्रादि भी वृक्षों से प्राप्त होते हैं। और तो और विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधों के लिए कच्चा माल भी हमें वृक्षों से प्राप्त होता है। यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि पर्यावरण संतुलन हेतु विषैली गैसों को पीकर प्राणवायु के रूप में अमृत उगलने का सत्कार्य भी वृक्ष ही करते हैं।

धार्मिक महत्व

भारतीय धर्म और संस्कृति में अनेक वृक्ष स्वयं पूजनीय माने गए हैं। अनेक वृक्षों में देवताओं का वास स्वीकार किया गया है। मसलन तुलसी का पौधा विष्णु-प्रिया के रूप में घर-घर में पूजनीय है, तो केले का पौधा गुरु बृहस्पति की पूजा का प्रतीक माना जाता है। संतान प्राप्ति के लिए बरगद की पूजा का भले ही वैज्ञानिक आधार न हो, किन्तु आज भी बरगद उतना ही पूजनीय है जितना प्राचीन काल में था। स्कन्दपुराण में पीपल के वृक्ष में ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों देवताओं का वास बताया गया है। वैज्ञानिक भी इस बात से सहमत हैं कि तुलसी और पीपल जैसे वृक्ष अधिक मात्रा में आक्सीजन प्रदान करते हैं। शायद यही कारण है सदियों से तुलसी का पौधा हमारे घरों की शोभा ही नहीं बढ़ाता, वरन् प्राणवायु आक्सीजन भी प्रदान करता रहा है। गीता में भगवान कृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है—''अश्वत्थः सर्व वृक्षाणाम्'' अर्थात् वृक्षों में मैं पीपल हूं। पीपल और बरगद का विशाल वृक्ष थके-हारे पथिकों को न केवल शीतल छाया प्रदान करता है, वरन वातावरण में प्रचुर मात्रा में आक्सीजन भी छोड़ता है। भक्तजनों तथा देवताओं के तिलक लगाने हेतु चंदन वृक्ष की लकड़ी का प्रयोग किया जाता है। हवन में समिधा के रूप में आम की सूखी लकड़ी तथा पीपल, बरगद, शमी, पाकड़ आदि वृक्षों की लकड़ी तथा बेल, नींबू, धतूरा आदि वृक्षों के फलों का आहुतियों के रूप में उपयोग आवश्यक रूप में किया जाता है। शास्त्रों में वरुण देवता का वास खजूर के वृक्ष में तथा जम्बू वृक्ष में बादलों का आह्वान करने की शक्ति मानी गयी है। भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए बेलपत्र अर्पित करना परमावश्यक माना जाता है।

सृजन में सहायक

भारतीय जीवन एवं संस्कृति के सन्दर्भ में वृक्षों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति हेतु अनुकूल परिवेश प्रदान करती है। सच तो यह है कि वृक्षों की शीतल छाया, नयनाभिराम हरीतिमा तथा जीवनदायिनी वायु तथा मंद सुगन्ध के सानिध्य में ही हमारे मंत्र-दृष्टा एवं त्रिकालदर्शी ऋषियों एवं मुनियों ने मानव-जीवन की भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से अनेकानेक धर्मग्रन्थों की रचना की थी। वृक्षों द्वारा निर्मित मनोहारी परिवेश में ही कालिदास, सूरदास, रसखान आदि कवियों ने अपनी कविता की। रसखान कवि ने तो यहां तक कहा—''जो खग हों तो बसेरों करों नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।'' वस्तुतः मानव ही नहीं अपितु भारत की पावन धरती पर अवतरित होने वाले भगवान के अवतारों का जीवन भी वृक्षों से बहुत अधिक सम्बद्ध रहा है। भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं में कदम्ब के वृक्ष एवं वन-वीथि खूब सम्मिलित हैं। भगवान श्रीराम ने अपने जीवन के चौदह वर्षों का लम्बा समय वनों और वृक्षों के सानिध्य में व्यतीत किया था। इतना ही नहीं, भगवान बुद्ध को परमज्ञान की प्राप्ति बोधगया में वृक्ष के नीचे ही हुई थी।

आध्यात्मिक महत्व

वृक्षों के प्रति असीम प्रेम से प्रेरित होकर ही श्रीरामचन्द्र ने दंडक वन, श्रीकृष्ण ने वृंदावन, शौनकादि ऋषियों ने नैमिष वन में वास किया था। प्राचीन भारतीय वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा सन्यास आश्रम अर्थात् जीवन के तीन महत्वपूर्ण भाग वनों में व्यतीत होते थे। तुलसीदासजी ने भी रामायण में जीवन के चौथेकाल में अनिवार्य रूप से वन गमन की व्यवस्था की है—''चौथेपन जाइए नृप कानन।'' वृक्षों के आध्यात्मिक महत्व के कारण मत्स्यपुराण में कहा गया है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर

एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है। शास्त्रों में वृक्षों की सेवा को मोक्षदायिनी कहा गया है। प्राणी जगत के लिए वृक्षों के उपकारों को पंच महायज्ञों के समान बताते हुए कहा गया है कि गृहस्थों के लिए ईंधन के रूप में अग्निरूप में, पथिकों के लिए छाया एवं विश्राम रूप में, पक्षियों के लिए घोंसले के रूप में तथा पत्र, मूल एवं छिलका आदि द्वारा समस्त प्राणियों के लिए औषधि के रूप में वृक्ष जो पांच उपकार करते हैं, वे उनके द्वारा किए जाने वाले दैनिक पांच महायज्ञ हैं।

वैज्ञानिक महत्व

वनों और वृक्षों का हमारे जीवन में न केवल आध्यात्मिक अपितु आर्थिक और वैज्ञानिक महत्व भी है। वृक्षों को आजकल वैज्ञानिकों ने "हरा फेफड़ा" कहना आरम्भ कर दिया है, क्योंकि हरे पौधे वायु प्रदूषण को दूर करते हैं। जीवों द्वारा छोड़े गए कार्बन डाइ आक्साइड को पौधे ग्रहण कर आक्सीजन छोड़ते हैं। आक्सीजन सभी जीवधारियों को प्राणवायु के रूप में चाहिए। इस प्रकार पेड़-पौधे हमारे अस्तित्व के लिए बहुत ही आवश्यक हैं। वायु प्रदूषण के साथ-साथ सघन वन ध्वनि प्रदूषण को भी नियंत्रित करते हैं। वनों से मौसम नियंत्रित होता है। इमारती लकड़ियां और उपयोगी जड़ी-बूटियां वृक्षों से मिलती हैं। गरज यह कि वृक्षों और पेड़-पौधों से मानव को बेशुमार फायदे हैं। किन्तु दिनोंदिन कटते वन और विलुप्त होते वन्य प्राणी गम्भीर चिंता के विषय बन गए हैं। आज पर्यावरण प्रदूषण बहस का एक अहम मुद्दा बन गया है। पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण है वनों/वृक्षों की अंधाधुंध कटाई। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि प्रति मिनट 32 हेक्टेयर के हिसाब से लुप्त होने वाले विश्व के गर्म देशों के वनों को बचाना आज विश्व में चिंता का प्रमुख विषय बना हुआ है। जाहिर है ये वन दक्षिण गोलार्द्ध, दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, प्रशांत और दक्षिणी पूर्वी एशिया में स्थित हैं। वन और वृक्ष किसी देश की आर्थिक व्यवस्था को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। वृक्ष हरियाली का उद्‌गम हैं, स्वास्थ्य की वृद्धि बूटी हैं, वर्षा के नियंत्रक और प्राणी मात्र के पोषक हैं। वन विनाश के कारण भूमि क्षरण उर्वरा शक्ति में कमी, बाढ़ों का आवागमन, शुद्ध वायु की कमी तथा खारे जल की वृद्धि आदि अनेक समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

प्रकाश संश्लेषण

हरे पौधे सूर्य की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा अपना भोजन बनाते हैं और सभी जीवधारी प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से अपने भोजन/पोषण के लिए पौधों पर ही निर्भर करते हैं, इस प्रकार हरे पौधे स्वपोषी कहलाते हैं। ये सम्पूर्ण प्राणी जगत के अन्नदाता हैं। प्रकाश संश्लेषण में कार्बन डाइ आक्साइड का उपयोग होता है। इसी क्रिया में पौधे आक्सीजन छोड़ते हैं, जिससे वातावरण में गैसों का संतुलन बना रहता है। तात्पर्य यह कि हरा वृक्ष एक जीवित कारखाने की मानिंद है जो आक्सीजन और भोजन बनाता है। वृक्षों से हमें अनेक प्रकार के अन्न, फल-फूल, सब्जियां, रेशे, गोंद, इमारती लकड़ी तथा उद्योगों के कच्चे पदार्थ मिलते हैं। अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों का रैन बसेरा भी वृक्ष ही हैं।

औद्योगिक संस्कृति के विकास के साथ ही वनों का विनाश आरम्भ हो गया। आज हरे पेड़ पौधों पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। मानव की कारगुजारियों से धरती का हरा रंग धूमिल पड़ता जा रहा है। कंकरीट के जंगल बढ़ते जा रहे हैं। शस्य श्यामला धरती की उर्वरा शक्ति घटती जा रही है। देश में वनों का निरंतर ह्रास होता जा रहा है जो गम्भीर चिंता का विषय है। इस समय वनों का आच्छादन कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के लगभग 24 प्रतिशत तक ही सीमित है, जबकि न्यूनतम अपेक्षित आच्छादन 33 प्रतिशत है।

राष्ट्रीय वन नीति

भारत सरकार द्वारा 1988 में अपनाई गई राष्ट्रीय वन नीति वनों के संरक्षण की दिशा में एक ठोस कदम है। इसका मुख्य उद्देश्य सघन वनीकरण एवं सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों द्वारा विशेषतः वृक्षहीन, निम्नस्तरीय एवं अनुपयोगी भूमि पर वन आच्छादन में भरपूर वृद्धि करना है। वनों की अवैध कटाई को भी प्रतिबंधित किया गया है। किन्तु सरकारी प्रयास के साथ ही सामाजिक और स्वैच्छिक संस्थाओं को भी आगे आना होगा। तभी हम विश्व की वन्य तथा प्राणी संपदा को विलुप्त होने से बचा सकते है। अगर हमें अपने अस्तित्व को बचाये और बनाये रखना है तो "वृक्षं शरणं गच्छामि" के नारे पर अमल करना होगा। इसी में परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण निहित है। वृक्ष हमारे अन्नदाता, जीवनदाता और अभिन्न मित्र हैं। आइए हर वर्ष अधिक से अधिक वृक्ष लगाने और उनके संरक्षण का शुभ संकल्प लें।

अध्यक्ष,
प्राणी विज्ञान विभाग,
के. एस. आर. कालेज,
सरायरंजन, समस्तीपुर 848127।

जंगल से आती है आवाज : बचाओ

डा. गणेश कुमार पाठक
प्राध्यापक, भूगोल विभाग
महाविद्यालय दूबेछपरा, बलिया (उ. प्र.)

भारतीय उपमहाद्वीप संसार भर में पर्यावरण और भौगोलिक विविधताओं के कारण कई जाति के वन्य प्राणियों से भरा पड़ा है। विश्व की केवल दो प्रतिशत भूमि होते हुए भी यहां विश्व के पांच प्रतिशत वन्य-प्राणी पाये जाते हैं। मानव की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न और आवास की समस्या के परिणामस्वरूप जंगल दिनोंदिन कटते जा रहे हैं। राष्ट्रीय वन नीति के अनुसार देश के सम्पूर्ण क्षेत्रफल के 33 प्रतिशत क्षेत्र पर वनों का होना आवश्यक है, जबकि आज देश के लगभग 14 प्रतिशत क्षेत्र पर ही वन बचे हैं। इस प्रकार वनों के निरन्तर कटते जाने से उनके निवासी यानी वन्य-प्राणी कम होते जा रहे हैं।

कौन नहीं जानता कि वन्य प्राणी हमारे जैवीय साधनों का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। यद्यपि विश्व भर में वन्य प्राणियों की स्थिति अलग-अलग है तथा अधिकांश क्षेत्रों में वह शोचनीय ही है। मानव द्वारा वन्य प्राणियों के साथ खिलवाड़ के कारण इनका भविष्य अंधकारपूर्ण है। मानव की गतिविधियों के फलस्वरूप संसार में अनेक वन्य प्राणी विलोपन की स्थिति में पहुंच रहे हैं।

पृथ्वी के कुछ भागों में तो वन्य जीवन लगभग समाप्त ही हो गया हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वन्य प्राणियों का विनाश मानव-जाति के लिए दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का सूचक है। अतः मानव-जाति के अस्तित्व को कायम रखने के लिए वन्य प्राणियों के अस्तित्व को कायम रखना नितान्त जरूरी है।

वन्य प्राणियों की रक्षा

वन्य जीवन (संरक्षण) कानून, 1972 द्वारा भारत में विपत्तिग्रस्त वन्य जीवों की एक बड़ी सूची तैयार की गई है तथा उन्हें अंधाधुध शिकार के कारण संभावित विनाश से बचाने का प्रावधान है। उसके पहले शेड्यूल में 70 वनचरों, 22 रेंगने वाले प्राणियों व उभयचरों तथा 41 पक्षियों को दुर्लभ तथा खतरे की स्थिति में बताया गया है। अब समूचे देश में उनका संरक्षण किया जा रहा है।

दक्षिण भारत के चोल क्षेत्र में सदा हरे-भरे वर्षा युक्त वनों में बसने वाला मैकाक (शेरपूंछ बन्दर) आज संसार भर में सबसे ज्यादा संकट में पड़ा बन्दर है। बाल्टीमोर के 'जान हापकिन्स स्कूल आफ मैडीसिन' में नर वानर के पुनर्जन्म सम्बन्धी शोध के विशेषज्ञ डा. पाल हेलटन के अनुसार "इस सुन्दर प्राणी की संख्या अब जंगलों में 195 से अधिक नहीं होगी।" वे जिन जंगलों में रहते हैं, वे गत तीस वर्षों में बड़ी तेजी से मिटे हैं। भेड़िया, लोमड़ी, भारतीय सियार और जंगली कुत्ते भी खतरे से बचे हुए नहीं है। एक अनुमान के अनुसार भारतीय भेड़ियों की संख्या 500 से 800 के बीच है। चूंकि उनके जंगल और उनके शिकार खत्म होते जा रहे हैं, इसलिए भेड़िये अब पेट भरने के लिए पालतू पशुओं पर ज्यादा हमले करने लगे हैं और इसलिए किसानों और गडरियों के हाथों मारे जा रहे हैं।

बाघ, शेर, चीता और हिम चीते का शिकार व्यापार के लिए किया जाता है। इसी परिवार के बनबिलाव, चितकबरी बिल्ली जैसे छोटे प्राणियों को खाल के लिए मारा जाता है। एक सींग वाला भारतीय गैंडा अपने सींग के लिए मारा जा रहा है। वह भी लगभग समाप्त होने को है।

हिरणों की कुल नौ जातियों में से पांच तो दुर्लभ हो गई हैं या खतरे में हैं। वे हैं--मणिपुर के भोहों पर सींग वाले हिरण (संगाई), कश्मीरी हिरण (हनगुल) और दलदली हिरण (बारहसिंगा)।

प्रसिद्ध भारतीय प्रकृतिशास्त्री श्री जफर फतेह अली के अनुसार 1970 में हनगुल की संख्या 150 से कम हो गई थी। मुख्य कारण था सैनिक अधिकारियों द्वारा अवैध शिकार। अब ये 300 हो गये हैं। मृग का शिकार तो सुगंध द्रव्यों में कस्तूरी के उपयोग के कारण सदियों से होता रहा है। "वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ "फंड इण्डिया" के अनुसार इस शताब्दी के शुरू के दिनों में कस्तूरी 10 रुपये तोला (11.6 ग्राम) यानि सोने के दाम से आधी कीमत पर बिकती थी। आज कस्तूरी का भाव 4200 रुपये तोला है सोने के दाम से कहीं अधिक।" 1972 से कस्तूरी व्यापार पर कानूनी प्रतिबन्ध लगाया गया है, फिर भी वह चोरी-छिपे बराबर जारी है। ग्यारह किस्तों की उड़ने वाली गिलहरी और चूहे जाति के हिम-मूश

(बर्फीले चूहे) भी मिटने की स्थिति में हैं। वे अपनी खाल और मांस के लिए मारे जाते हैं।

रेंगने वाली जातियों में से छिपकली, सांप, मगर, और कछुए उनके अण्डे, मांस, खाल और विष के लिए मारे जाते हैं। केरल के लगभग 200 किलोमीटर समुद्र तट को भूक्षरण से बचाने के लिए सीमेंट और पत्थर की पुश्ती बनाकर लगाई गई, "बाड़" के कारण समुद्री कछुए अब बेघर हो गए हैं। इस कारण केरल के तटीय प्रदेश में मिलने वाले कुल 5 में से 4 जातियों के कछुए गायब ही हो रहे हैं। पूर्वी समुद्री तट पर आलिव रीडली नामक समुद्री कछुओं को खाल और अण्डे के लिए मारा जाता है।

आवास स्थानों के उजड़ने से, पानी और हवा के प्रदूषण से और गीले इलाकों से पानी हटते जाने से भारत के कई पक्षियों का जीवन समाप्त प्रायः हो रहा है। शिकार खेलने और पिंजड़े में कैद करके बेचने से भी पक्षियों की तादाद घट रही है। वन-विनाश के कारण बांस के तीतर, हिमालय के रंगीन चकौर व कल्पीदार चकोर जैसी जातियों के लिए खतरा पैदा हो रहा है। भारत की प्रमुख नदियों के किनारे बसने वाले धौबेचा और पनचीरा जल-प्रदूषण के कारण अत्यन्त दुर्लभ हो चले हैं। साइबेरिया के सारस जो हर जाड़े में उत्तर भारत के झीलों में आते रहे हैं, अब कम होने लगे हैं। शिकार खेलने के कारण और उनके आवास स्थान को उजाड़ने के कारण भारत का गोडावण लगभग विलुप्त होने की स्थिति में हैं।

इतना ही नहीं, वन्य प्राणियों के शिकार पर रोक के बावजूद भी विश्व भर में अनेक प्राणी तथा पादप प्रजातियां तेजी से विलुप्त होने की ओर बढ़ रही हैं। इसका कारण यह भी है कि वन्य प्राणियों का अनियंत्रित शिकार तो रोक दिया गया है, पर वनों का विनाश अभी भी जारी है। वनों के विनाश से वन्य प्राणियों के आवास स्थल कम होते जा रहे हैं और सुरक्षित तथा अनुकूल आवास स्थलों के अभाव में वन्य प्राणी तेजी से कम होते जा रहे हैं। ईसा सम्वत् के प्रारम्भ से अब तक भारत में जन्तु तथा पक्षियों की 200 प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और अभी भी लगभग 250 अन्य प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। विलुप्त होने के खतरे से घिरे प्रमुख प्राणियों में कृष्ण सारस, चीतल, भेड़िया, नीलगाय, अनूप मृग, भारतीय कुरंग, बारहसिंगा, चीता, गैंडा, गिर सिंह, मगर, हसावर, हवासिल, सारंग, श्वेत सारस, पर्वतीय बटेर इत्यादि हैं।

भारत के अतिरिक्त संसार के अन्य कई क्षेत्रों में भी वन्य प्राणी संकट के दौर से गुजर रहे हैं। अमरीका के दक्षिण पर्वतीय सिंह, यात्री कबूतर, करौलिना तोता, क्षुपी मुर्गी इत्यादि तो गायब हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त श्वेत पुंज प्रेयरी कुत्ता, कुक्कुट सारस, डार्ट, घोघा मछली, मूज, कैरीबू, ग्रिजली, भालू, काशीका, गजदन्त, चोंच कठफोड़वा, हवाई राजहंस, फ्लोरिडा, तेंदुआ आदि प्राणियों का अस्तित्व भी खतरे में है।

कैसे हो वन्य प्राणियों का संरक्षण

सम्भवतः भारत विश्व में पहला देश है, जहां वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए सर्वप्रथम नियम व कानून बनाये गये हैं। यहां आज से सौ वर्ष पूर्व 1887 में वन्य प्राणियों के संरक्षण के लिए एक अधिनियम बनाया गया था। परन्तु किन्हीं कारणों से 1912 में इसे निरस्त कर दिया गया। इसके बाद 1927 में पुनः एक कानून बना, जो कई प्रान्तों में वन्य प्राणियों की सुरक्षा के लिए लागू किया गया। तत्पश्चात् सन् 1952 में वन्य प्राणियों की सुरक्षा के लिए एक समिति का गठन किया गया। 1972 में पुनः वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम 1972 लागू कर दिया गया। इसके तहत वन्य जीवों के शिकार पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

जैव मंडल में वन्य प्राणियों के महत्व की स्थापना के साथ ही साथ विश्व भर में इनके संरक्षण के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इस दिशा में गम्भीर प्रयास कर रहे हैं। इनमें विश्व वन्य प्राणी कोष (वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड) सबसे आगे है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों से द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय आधार पर वन्य प्राणी संरक्षण के अनेक कार्यक्रम देश में चल रहे हैं। इस दिशा में जीवमण्डल संरक्षण कार्यक्रम (बायोस्फियर रिजर्व) एक महत्वपूर्ण कदम है। यूनेस्को ने विश्व स्तर पर "मानव और जीवमंडल" नाम का एक कार्यक्रम सन् 1973 से शुरू किया है। अब तक करीब 40 राष्ट्रों में 200 से अधिक बायोस्फियर बनाये गए हैं। हमारे देश के सात क्षेत्रों को बायोस्फियर रिजर्व बनाने पर विचार विमर्श चल रहा है। ये क्षेत्र हैं—तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक की मिलीजुली सीमा पर स्थित नीलगिरि, मेघालय में तुरा अभयारण्य, अरुणाचल प्रदेश में नमदफा, उत्तर प्रदेश के तुंगनाथ-रुद्रनाथ के पास फूलों की घाटी, नन्दा देवी, अंडमान निकोबार द्वीप समूहों में से कुछ द्वीप और तमिलनाडु की मन्नार खाड़ी।

इन प्रयासों का इतना लाभदायक प्रभाव देखने को मिला कि पिछले दशक में ही गैंडा, चीता, मनीपुरी हिरण, कश्मीरी महामृग, सांभर, चीतल, जंगली सूअर इत्यादि जैसे लगभग विलुप्तप्राय प्राणियों की संख्या में संतोषजनक वृद्धि हुई है। ऐसे ही सफल

प्रयासों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण 'बाघ बचाओ' नामक योजना है। इस सदी की शुरुआत में कोई 40 हजार बाघ थे, जो 1972 तक घटकर केवल 1827 रह गये थे। इस प्रकार बाघों की संख्या को तेजी से घटते देखकर, 'प्रोजेक्ट टाइगर' नामक एक योजना भारत सरकार ने 'वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड (भारत)' और 'इंटरनेशनल यूनियन फार कन्जर्वेशन आफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेज' के सहयोग से बनाई। इसके अन्तर्गत 1973 में देश के नौ राज्यों में कुल 13,017 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र अधिगृहीत किया गया जिसमें 268 बाघ थे। आज 10 राज्यों में 11 ऐसे क्षेत्र हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल 15,760 वर्ग किलोमीटर है। इनमें से 4963 किलोमीटर क्षेत्र एकदम सुरक्षित रखा गया है। जहां मानव प्रवेश तथा पशुओं की चराई पर सख्त मनाही है। 1979 में की गई गिनती के अनुसार देश में कुल 3015 बाघ हैं, जिनमें से 711 विशेष संरक्षित वनों में हैं। अतः बाघों की संख्या में वृद्धि करने का श्रेय निश्चित ही इस 'प्रोजेक्ट टाइगर' कार्यक्रम को ही जाता है।

केन्द्र सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकारों ने भी अपने-अपने स्तर पर वन्य प्राणी संरक्षण में बहुत रुचि दिखलाई है। इस कार्य में मध्य प्रदेश का अग्रणी स्थान है, जिसके पुनर्गठन के पूर्व राज्य में मात्र एक कान्हा राष्ट्रीय उद्यान था। यह 1930 में आरक्षित आखेट क्षेत्र घोषित हुआ तथा 1953 में अभयारण्य बना और तत्पश्चात् 1955 में इसे राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया गया। पुनर्गठन के बाद माधव राष्ट्रीय उद्यान, शिवपुरी को 1958 में राष्ट्रीय उद्यान बनाया गया। इसके बाद बांधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान उमरिया का गठन हुआ।

अब तक राष्ट्रीय उद्यानों के अतिरिक्त वन्य प्राणी (संरक्षण) अधिनियम में 1972 के अन्तर्गत 24 अभयारण्यों की स्थापना हो चुकी है। सोन-चिड़िया, घड़ियाल, जंगली भैंसे के संरक्षण के लिए विशेष उपाय किए गए तथा इनके लिए उपयुक्त क्षेत्रों में अभयारण्यों की स्थापना की गई।

मध्य प्रदेश में राष्ट्रीय उद्यानों का क्षेत्रफल 13,110 वर्ग किलोमीटर हो जाने की सम्भावना है, जबकि सम्पूर्ण राज्य का क्षेत्रफल 4,43,406 वर्ग किलोमीटर है। राज्य में अवैध शिकार पर सन् 1971 से ही पूर्ण प्रतिबन्ध लगा हुआ है, जिसके फलस्वरूप समस्त क्षेत्रों में वन्य प्राणियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। मध्य प्रदेश की भांति अन्य राज्य भी अपने स्तर पर तथा केन्द्र सरकार के साथ तालमेल रखकर वन्य प्राणी एवं पर्यावरण संरक्षण की दिशा में तत्परता से कार्य कर रहे हैं।

यद्यपि वन्य प्राणियों को विनाश से बचाने हेतु भारत सरकार सहित राज्य सरकारें भी कारगर कदम उठा रही हैं, फिर भी यह प्रयास पर्याप्त नहीं है। अगर इसी तरह वन्य प्राणियों का विनाश होता रहा, तो पारिस्थितिकी असंतुलन तो होगा ही, इन प्राणियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायेंगे और फिर पछतावे के अलावा हमें कुछ हाथ नहीं लगेगा।

(पृष्ठ 17 का शेष)

नानकू....

कहकर वह कुछ लाने बढ़ा, पर मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे रोकते कहा—"अब हम लोग इस शहर में ही आ गए हैं। आते रहेंगे। मकान मिलने पर तुम्हें भी ले चलेंगे।"

पर नानकू जिद पकड़ गया। आखिर हम उसके रेस्टोरैंट में बैठे। एक उड़ती दृष्टि रेस्टोरैंट में डालकर मैं खुशी-खुशी नानकू से बोला—"चलो अच्छा हुआ, तुमने तरक्की की, वरना यह (पत्नी) मुझे ताने ही कसती रहती।"

वह मुस्कराने लगा।

मैंने आगे फिर कहा—"पर तुम्हें बेसहारों में मांगने की आदत को रोकने की कोशिश भी करनी चाहिए।"

"मैं कर रहा हूं बाबू जी।"

"कैसे?"

"मैंने अपने रेस्टोरैंट में ज्यादातर ऐसे ही बेसहारों को ही नौकरी दी है।"

"अच्छा किया, लेकिन इतने से ही तुम संतुष्ट न हो जाना।"

हम रेस्टोरैंट से बाहर निकले। मैं चकित रह गया जब मैंने देखा कि सामने एक चाट वाले की दुकान पर चाट खाने वाले व्यक्तियों को कुछ बच्चे मुंह खोले टकटकी लगाए देख रहे हैं। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही जब कुछ बच्चे, एक चाट खाने वाले के पत्ते फेंकते ही लपके। वह दृश्य मैंने नानकू को भी दिखलाया। नानकू बेचैनी भरे स्वर में बोला—"बाबूजी यह तो मैं रोज देखता हूं।"

"पर देखने से समस्या हल न होगी मेरे दोस्त।"

"हल तो जनता और सरकार के सहयोग से होगी"

"ठीक कहते हो। वरना यह घाव एक दिन नासूर बन जाएगा।"

2/183 मुक्ता प्रसाद नगर,
बीकानेर - 334004

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग से ग्रामीण विकास की संभावनाएं

सुरेश अवस्थी

पिछले करीब दस वर्षों से भारत के मध्यमवर्गीय परिवारों की जीवन-शैली में तेजी से हो रहे परिवर्तनों, शहरी आबादी में दिनों दिन होती वृद्धि, साक्षरता स्तर में सुधार और प्रचार माध्यमों में आकर्षक विज्ञापनों के कारण डिब्बा बंद तैयार खाद्य पदार्थों की मांग तेजी से बढ़ी है। इसके कारण लोगों की खान-पान की आदतों में भी भारी बदलाव आया है। आधुनिक जीवन में फास्ट फूड की बढ़ती प्रवृत्ति से प्रसंस्करित खाद्य उत्पादों को काफी प्रोत्साहन मिला है। बढ़ती हुई मांग को देखते हुए प्रसंस्करित खाद्य पदार्थों पर नये-नये उत्पादों के प्रस्तुतिकरण जैसे उनकी आकर्षक पैकिंग, स्वाद और रंग रूप के लिए दबाव बढ़ा है, जो इस उद्योग की जीवंतता के लिए अति आवश्यक है।

भारत में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग यूं तो काफी पुराना है तथापि उसकी स्थिति हाल के वर्षों तक कोई ज्यादा अच्छी नहीं थी। प्रबंध-व्यवस्था और विविधता के अभाव के कारण न तो उद्योगों को ही कोई खास लाभ हो रहा था और न ही उपभोक्ताओं को संतोष हो रहा था। वर्ष 1988 में तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने भारत जैसे कृषि प्रधान देश में इस उद्योग के महत्व को समझा और एक अलग खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय का गठन किया। उसी के बाद से इस उद्योग के विकास के लिए सघन और सुनियोजित प्रयास शुरू हुए। इस उद्योग को प्रोत्साहन देने के दो उद्देश्य हैं। एक तो, कृषि क्षेत्र के निवेश में वृद्धि और किसानों को लाभदायक मूल्य दिलाकर उनकी अपनी आर्थिक स्थिति के साथ-साथ समूचे ग्रामीण क्षेत्र की अर्थ व्यवस्था में सुधार लाना, और दूसरे, प्रसंस्करित खाद्य पदार्थों का निर्यात बढ़ाकर बहुमूल्य विदेशी मुद्रा कमाना।

अब तक प्रसंस्करण उद्योग को यदि उचित समर्थन और प्रोत्साहन नहीं मिल रहा था तो उसके अनेक कारण थे। इस तरह के भोज्य और खाद्य पदार्थों को कतिपय शहरी अमीरों का शुगल मानते हुए उन पर भारी कर लगाये जाते थे। नवीन प्रौद्योगिकी के आयात पर प्रतिबंधों के अलावा अनुसंधान एवं विकास का समर्थन भी लगभग शून्य ही था। अपर्याप्त प्रशिक्षण और गुणवत्ता नियंत्रण सुविधाओं के अभाव में यह क्षेत्र प्रभावित रहा। प्रधानमंत्री श्री पी. वी. नरसिम्ह राव की प्रेरणा एवं मार्ग-दर्शन में वर्ष 1991 से उदारीकरण और अनेक क्षेत्रों में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित करने की जो नई नीति अपनाई गई है, उससे भारत का खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी लाभान्वित हुआ है। इसी नीति के तहत खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय में इन उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए अनेक नियमों को शिथिल बनाया गया है और अन्य अनेक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया है। लाइसेंस प्रणाली भी समाप्त कर दी गई है। विदेशी निवेश और प्रौद्योगिकी आयात के नियमों को उदार बनाया गया है। साथ ही विदेशी इक्विटी में अधिक निवेश की अनुमति भी दी गई है। इन उपायों के फलस्वरूप, भारतीय उत्पादों को अपना स्तर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक लाने और लागत को कम करने का अवसर मिला है।

इन उपायों के फलस्वरूप अनेक विदेशी और अनिवासी भारतीय उद्योगपतियों सहित बहुराष्ट्रीय कंपनियां भी इस ओर आकर्षित हुई हैं और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में व्यापक निवेश हो रहा है। पिछले तीन वर्षों में प्रसंस्करण उद्योगों के लगभग तीन हजार प्रस्ताव रखे गये हैं, जिन पर कुल मिलाकर करीब तीन खरब 65 अरब रुपये की लागत आयेगी। यह एक अति उत्साहवर्धक तथ्य है, क्योंकि इससे पहले इस क्षेत्र में निवेश के इतने बड़े प्रस्ताव कभी नहीं मिले थे। इन इकाइयों के शुरू हो जाने पर पांच लाख से अधिक लोगों को रोजगार मिल सकेगा। इनमें से करीब 4 लाख 50 हजार लोग ग्रामीण क्षेत्रों के होंगे। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अधिकांश इकाइयां ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों में लगाई जायेंगी। अब तक करीब 375 प्रस्तावों को मूर्त रूप दिया जा चुका है जिनसे करीब 60 हजार लोगों को रोजगार के अवसर मिले हैं। विदेशी कर्पनियों, अनिवासी भारतीय उद्योगपतियों और स्वदेशी उद्यमियों द्वारा शत प्रतिशत निर्यात करने वाली इकाइयों के लिए अब तक 70 अरब 60 करोड़ रुपये के प्रस्ताव मिले हैं। इनमें से 67 अरब 50 करोड़ रुपये के उद्योग ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में लगाये जायेंगे। खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों में दूध, फल और सब्जियों के अलावा मांस और मांस उत्पादों के साथ-साथ अंडा प्रसंस्करण और प्रसंस्करित मत्स्य उद्योग भी शामिल हैं।

सबसे अधिक प्रस्ताव दुग्ध प्रसंस्करण अर्थात् दूध से बनने वाली वस्तुओं के क्षेत्र में आये हैं। अकेले इसी क्षेत्र में, एक खरब 6 अरब 76 करोड़ रुपये के निवेश का अनुमान है। इसके अलावा उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में 34 अरब 90 करोड़ रुपये और डिब्बाबंद मांस के क्षेत्र में करीब 8 अरब 80 करोड़ रुपये की पेशकश हुई है। इन सब उद्योगों की स्थापना से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में वृद्धि के साथ-साथ उनके समग्र विकास को एक नया आयाम मिलेगा। वित्त वर्ष 1995-96 के बजट में ग्रामीण क्षेत्रों में और अधिक संसाधन जुटाने तथा परियोजनाओं को निर्धारित समय में पूरा करने के लिए सरकार ने ग्रामीण आधारभूत संरचनात्मक विकास निधि नाम का एक विशेष कोष स्थापित करने की घोषणा की है। चूंकि खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मुख्यतः कृषि पर ही आधारित होते हैं अतः उनकी स्थापना शहरों के पास के ग्रामीण इलाकों में ही होने की अधिक संभावना है। इन उद्योगों के फलीभूत होने के लिये छोटे शहरों और ग्रामीण इलाकों में जिन बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता है, उसी को जुटाने के लिये, इस निधि की स्थापना का निर्णय लिया गया है। इनसे ग्रामीण क्षेत्रों के विकास को निश्चित रूप से एक नयी दिशा मिलेगी।

सरकार द्वारा अपनायी गयी उदार नीतियों के कारण खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को विदेशों में विस्तृत बाजार भी उपलब्ध हुआ है। इस प्रकार के उद्योगों में बनी वस्तुओं के विदेश व्यापार का एक नया मार्ग अब धीरे-धीरे खुलने लगा है। पिछले दो वर्षों में प्रसंस्करित खाद्य एवं भोज्य पदार्थों के निर्यात में भारी वृद्धि हुई है। पिछले वित्त वर्ष में लगभग चालीस अरब रुपये की खाद्य सामग्री का निर्यात किया गया था जोकि एक रिकार्ड है। हाल के वर्षों में ऐसी शानदार उपलब्धि शायद ही किसी अन्य क्षेत्र में हुई हो। आठवीं योजना में खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में कुल निवेश एक खरब 20 अरब रुपये का होने का अनुमान है।

केंद्र सरकार की उदार औद्योगिक नीति के परिणामस्वरूप भारतीय उद्योगों को जो नई प्राणवायु मिली है उसकी झलक खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में भी दिखाई देने लगी है। भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश के इच्छुक अमरीका, जापान, फ्रांस, कोरिया, ब्रिटेन, स्पेन और जर्मनी जैसे देशों ने खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में पर्याप्त रुचि दिखाई है। दूध, फल, सब्जियां, अनाज, मांस, अंडा, समुद्री उत्पाद, पेय पदार्थ, डेयरी उद्योग, खाद्य तेल, मशरूम और नाश्ते के तैयार भोज्य पदार्थों से संबंधित उत्पादों और उद्योगों पर अब न केवल बड़े-बड़े देशी उद्योग घरानों की आंखें लगी हैं, वरन् अनेक विदेशी निवेशकों की भी इसमें रुचि है। भारत का अनुकूल कृषि वातावरण, प्रचुर तकनीकी जनशक्ति और सस्ती श्रमशक्ति के साथ-साथ 25 करोड़ मध्य वर्गीय उपभोक्ताओं का विशाल भारतीय बाजार, इन देशी-विदेशी निवेशकों के लिए बहुत बड़ा आकर्षण है। इन संभावनाओं के कारण प्रसंस्करित खाद्य पदार्थों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भारत की भूमिका अधिक प्रभावशाली हो गई है। निर्यात की अपार संभावनाओं के कारण जहां यह क्षेत्र देशवासियों के जीवन में आर्थिक समृद्धि के नये द्वार खोल सकता है वहीं सदियों से निर्धनता के जुअे तले पिस रहे भारतीय किसानों, पशुपालकों और मछुवारों को खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विस्तार में आशा की एक नई किरण दिखाई दे रही है।

6/5, ब्लाक-II,
मिंटो रोड अपार्टमेंट्स,
नई दिल्ली-110002

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिये। रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र अवश्य भेजिए। जिन रचनाओं के साथ ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा उन्हें स्वीकार नहीं किया जाएगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें। —सम्पादक

ग्रामीण युवाओं में नेतृत्व विकास : आवश्यकता और महत्व

वेद व अंशी

भारत एक ग्राम प्रधान देश है। राष्ट्र की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या गांवों में निवास करती है। युवा ग्रामीण समाज का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। आजकल लगभग बीस करोड़ युवा ग्रामीण अंचल में निवास करते हैं। बेरोजगारी, समुचित मार्गदर्शन का अभाव, भविष्य के प्रति अनिश्चितता तथा शिक्षा सुविधाओं की कमी आदि ग्रामीण युवाओं की कुछ गंभीर समस्याएं हैं जो कि उनमें निराशा का संचार करती हैं। समाज वैज्ञानिकों का मानना है कि ग्रामीण युवा वे लोग हैं जो कि 15 से 35 वर्ष की आयु सीमा में आते हैं तथा मुख्यतया गांवों में रहते हैं। नेहरूजी ने कहा था कि ग्रामीण युवक इस राष्ट्र की प्रमुख धरोहर है, उसका रचनात्मक, गतिशील, निर्णायक और आशावान होना राष्ट्र के लिए अत्यंत आवश्यक है। ग्रामीण युवा राष्ट्र का मुख्य ऊर्जा स्रोत है। उन्होंने इस बात पर विशेष जोर दिया कि युवाओं में समुचित नेतृत्व के विकास से राष्ट्र-विकास को गति और दिशा प्रदान की जा सकती है तथा संतुलित विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा गांधी जी ने ग्रामीण युवाओं के विकास को महत्व दिया। स्वतंत्रता के पश्चात् सामुदायिक विकास योजना के अंतर्गत गांवों में युवा क्लबों की स्थापना की गई तथा इनके संचालन का भार युवकों को सौंपा गया। किंतु लगभग एक दशक उपरांत यह पाया गया कि युवा क्लबों को अन्य योजनाओं के मुकाबले में महत्व नहीं मिल सका। युवकों की अपर्याप्त भागीदारी, गांवों के वर्ग विशेष के युवाओं का क्लब पर आधिपत्य, सामयिक और समुचित परामर्श का अभाव, सरकारी कर्मचारियों का उदासीन व्यवहार, आर्थिक संसाधनों की कमी तथा ग्रामीणों में सहयोग की भावना का अभाव आदि युवा क्लब की असफलता के मुख्य कारण थे।

ग्रामीण युवाओं के विकास हेतु इन संगठनों को मजबूत बनाने के प्रयास में युवक मंगल दल, बाल मंगल दल तथा महिला मंगल दल की स्थापना की गयी। जिला तथा खंड स्तर पर विशेष कर्मचारियों की व्यवस्था की गयी। लेकिन विशेष सफलता नहीं मिली। क्योंकि इन संगठनों को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त नहीं होती तथा उचित मार्गदर्शन के अभाव में इन संसाधनों का सही उपयोग नहीं हो पाता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग सैंतालिस वर्षों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। ग्रामीण युवाओं पर भी इन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ा है। बदलाव की इस धारा में युवाओं की समस्याएं भी बढ़ी हैं जिनमें बेरोजगारी और बेतहाशा मूल्यवृद्धि प्रमुख है। 1979 में विशेष रूप से आरंभ की गयी "ग्रामीण युवकों के स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण" (ट्राइसेम) योजना भी अनुकूल परिणाम प्रदर्शित करने के बावजूद भी जरूरतमंद और बड़ी संख्या में मौजूद युवाओं को अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी। 'राष्ट्रीय सेवा योजना' जैसे कार्यक्रम भी स्कूल कालेजों तक ही सीमित रह गये हैं। अतः आवश्यक है कि ग्रामीण युवाओं की वर्तमान समस्याओं का विश्लेषण किया जाए तथा एक सोची-समझी नीति के अंतर्गत ऐसे कार्यक्रम चलाए जाएं जिससे ग्रामीण युवकों को गतिशील, रचनात्मक, निर्णायक भूमिका के लिए तैयार किया जा सके। निम्नलिखित सुझाव कार्यक्रम नियोजन में लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं:

राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण युवा नीति की व्यवस्था

वर्तमान ग्रामीण समाज में युवकों की मनःस्थिति का विश्लेषण इस बात को प्रमाणित करता है कि युवा चाहे वह अशिक्षित, अल्पशिक्षित या शिक्षित हो, बेरोजगारी की चोट से घायल है। ऐसी अवस्था में समाज के ऐसे लोग जो कि इनके उपयोग से स्वार्थ सिद्धि चाहते हैं इनको प्यार की भाषा से गुमराह कर अनैतिक तथा असामाजिक कार्यों में लगा देते हैं और यह चाह

कर भी ऐसे लोगों के चंगुल से नहीं निकल पाते। अतः आवश्यक है कि हमारे नीति निर्धारिक इस बात को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करें और राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी नीति तैयार करें जिसके तहत युवाओं को विकास कार्यों के प्रति उत्साहित किया जा सके।

ग्रामीण युवाओं में नेतृत्व विकास हेतु प्रशिक्षण

युवा समुदाय एक ऐसा मानव संसाधन है जिसकी समस्याओं को निकटता में जाकर समझा जाना चाहिए तथा उसके आधार पर प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। इस प्रकार का क्रमबद्ध प्रयास ग्रामीण युवाओं को न केवल विकट निराशा के दलदल से बाहर ला सकता है अपितु विकास की मुख्य धारा में लाकर उन्हें सुखी एवं समृद्ध बना सकता है।

ग्रामीण युवकों का गठन तथा पर्याप्त प्रोत्साहन

युवकों को संगठित करना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य है। गांवों में कार्यरत सरकारी कर्मचारियों अथवा गैर सरकारी संगठनों को युवाओं को सामयिक परामर्श देकर संगठित करना चाहिए और उन्हें विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों का लाभ दिला कर प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे कि वे जानकारी और मार्गदर्शन का लाभ उठाकर विकास की मुख्य धारा में शामिल हो सकें। इस प्रकार ग्रामीण समुदाय का यह विशेष ऊर्जा युक्त समूह नेतृत्व की बागडोर संभाल सकेगा और विकास को तीव्र गति दे सकेगा।

स्वयंसेवी संस्थाओं को मान्यता तथा उत्साहवर्धन

हमारी आठवीं पंचवर्षीय योजना में स्वयंसेवी संस्थाओं को विशेष महत्व दिया गया है जो कि प्रसन्नता का विषय है। आज राष्ट्र में बहुत सी ऐसी स्वयंसेवी संस्थाएं है जो कि युवकों को प्रेरित तथा प्रशिक्षित करने में संलग्न हैं किंतु आर्थिक कठिनाइयों से इनके कार्यों में बाधाएं आती हैं। इन संस्थाओं ने पिछले दो दशकों में सराहनीय कार्य किया है। सरकारी सहायता इनके कार्यक्रमों में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हो सकती है। ये संस्थायें लाभ भावना से नहीं अपितु जनसेवा की भावना से पूर्ण समपर्ण के साथ कार्य करती हैं। अतः यह जरूरी है कि संस्थाओं को महत्व देकर इनका उत्साहवर्धन किया जाए।

पंचायती राज व्यवस्था का कुशल संचालन एवं सामयिक मूल्यांकन

73वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज व्यवस्था का पुनर्गठन एक सराहनीय कदम है। इसके कुशल संचालन की व्यवस्था अनिवार्य है तथा यह भी आवश्यक है कि इस व्यवस्था का सामयिक मूल्यांकन होता रहे। प्रशासनिक ढांचे में परिवर्तन और संबंधित कर्मचारियों को प्रशिक्षण की जरूरत है। इस प्रकार युवाओं को इस व्यवस्था में ज्यादा भागीदारी निभाने हेतु तैयार किया जा सकता है और युवा नेतृत्व को एक सही दिशा एवं गति प्रदान की जा सकती है।

प्रसार शिक्षा एवं वयस्क शिक्षा का पुनर्गठन

ग्रामीण युवाओं में समुचित नेतृत्व विकास हेतु प्रसार एवं वयस्क शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता है। युवकों को प्रेरित तथा उत्साहित करने हेतु प्रसार कार्यकर्ताओं एवं वयस्क शिक्षा कार्यकर्ताओं को विशेष रूप से प्रशिक्षित करना होगा तथा युवकों का समुचित विकास ही इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य होगा जिससे कि युवक संगठित होकर आगे आ सकें तथा वे विभिन्न विकास कार्यक्रमों का लाभ उठाकर राष्ट्र के विकास में सहयोग कर सकें।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिदृश्य में युवाओं का संगठित विकास अत्यन्त आवश्यक है। आज जबकि अधिकांश ग्रामीण युवा समुचित एवं सामयिक परामर्श के अभाव में अनिर्णय जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं, उन्हें एक नियोजित कार्यक्रम के अंतर्गत उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता है। युवाओं में नेतृत्व भावना का विकास एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके द्वारा ग्रामीण युवकों को संगठित, प्रेरित एवं प्रशिक्षित कर रचनात्मक तथा निर्णायक बनाया जा सकता है और वे राष्ट्र के विकास को समुचित गति एवं दिशा प्रदान कर सकते हैं। अतः ग्रामीण युवाओं में नेतृत्व विकास न केवल आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है वरन् अनिवार्य है। विश्लेषणों एवं अनुभवों पर आधारित उपरोक्त सुझाव इस प्रकार के कार्यक्रमों के लिए सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

संचार छात्र,
45-पी. जी. होस्टल
गो.ब.प.कृ.एवं प्रौ. वि. वि., पंतनगर, 263145 उ.प्र.

जल प्रदूषण का गहराता संकट

राजीव रंजन वर्मा

इस धरती पर जीवन के लिए पहली शर्त है—जल का प्राकृतिक रूप में अस्तित्व। दूसरे शब्दों में जल ही जीवन है और इसे दूषित होने से बचाना है। आज जब पृथ्वी पर जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है इसके कारण बढ़ती हुई विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कल-कारखानों और जैव अवशिष्ट के अलावा खतरनाक रसायनों को ठिकाने लगाने की समस्या प्रतिदिन विकट होती जा रही है। अगर इन पर उचित नियंत्रण नहीं रखा जाए तो विभिन्न प्रकार के प्रदूषक तत्व पानी के सम्पर्क में आकर उसे प्रदूषित कर देते हैं।

अगर जल ही प्रदूषित हो तो सारा का सारा जैव जगत प्रदूषित होकर समाप्त हो जाएगा। जल प्रदूषण की समस्या के कारगर निदान के लिए भारत सरकार ने 1974 में जल प्रदूषण नियंत्रण और निवारण अधिनियम बनाया। अब इसे लागू रखना और इस पर उचित निगरानी रखते हुए आवश्यकतानुसार प्रबन्धन करना हम सबका दायित्व है।

हमारे पूरे भूमण्डल पर तीन-चौथाई भाग में समुद्र है। समुद्र के जल का हम सीधे इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। वैसे जल के अन्य सभी उपयोगी स्रोत भी समुद्र से ही जल ग्रहण करते हैं। समुद्र से वाष्प बनकर उड़ने वाला जल ही वर्षा के रूप में पुनः धरती पर आता है। वर्षा का जल या तो पृथ्वी में समा जाता है या नदियों, तालाबों अथवा झरनों/झीलों के रूप में बदल जाता है। जल हरेक दृष्टि से "मानव जीवन का आधार" है। जल में विभिन्न प्रकार के लवण और रसायन घुले रहते हैं, इसलिए पूर्ण शुद्ध जल मुश्किल से ही हमें प्राप्त हो पाता है। जल में दूषित पदार्थ होने की संभावना रहती है। अनेक बैक्टीरिया पानी में मिल जाते हैं। शुद्ध जल स्वादरहित, रंगरहित तथा गन्धरहित होना चाहिए। व्यक्ति के अच्छे स्वास्थ्य के लिए केवल शुद्ध जल ही उपयोगी होता है। अशुद्ध जल अर्थात बैक्टीरिया युक्त जल से अनेक प्रकार के रोग होने की सम्भावना रहती है। मुख्य रूप से इससे पाचन क्रिया बिगड़ जाती है, भूख घट जाती है। साथ ही उल्टी होना, दस्त होना, भोजन का न पचना आदि अशुद्ध जल के ही परिणाम हैं। इसके अतिरिक्त हैजा, पेचिश, तपेदिक तथा टाइफाइड जैसे रोग भी बैक्टीरिया युक्त जल के द्वारा ही हो सकते हैं।

वायु के समान ही जल के अभाव में प्राणी का जीवित रहना सम्भव नहीं है। प्राणी को जल की आवश्यकता निरन्तर रूप से बनी रहती है। इसके अलावा हमारे भोजन में भी जल की पर्याप्त मात्रा होती है। मानव शरीर में लगभग 60 से 75 प्रतिशत भाग जल रहता है। हमारे शरीर के लिए जल सर्वाधिक उपयोगी है। हमारे दैनिक जीवन के सभी कार्य-कलाप जल के द्वारा ही पूरे होते हैं।

- मानव शरीर के रक्त का मुख्य तत्व भी जल ही है। जल रक्त को तरल रूप में बनाये रखता है।
- शरीर के तापक्रम को उचित बनाये रखने का कार्य भी जल द्वारा ही होता है। जल हमारे शरीर की त्वचा को कोमल, साफ-सुथरा और चिकना बनाये रखने में सहायक होता है।
- मानव शरीर में उत्पन्न होने वाले विजातीय तत्वों के विसर्जन का कार्य भी जल के ही माध्यम से होता है। मल-मूत्र एवं पसीने के रूप में जो जल हमारे शरीर से बाहर निकलता है, वह इन अशुद्धियों एवं गन्दगियों को अपने साथ निकाल देता है।

प्रकृति ने मानव समुदाय को जरूरत की प्रायः सभी चीजें दी हैं। भोजन के लिए उपजाऊ जमीन एवं उसमें लगे फल-फूल के पौधे एवं अनाज के खेत, जल के लिए नदी, झरने और तालाब, सांस लेने के लिए शुद्ध हवा, वातावरण के लिए हरे भरे सुन्दर वन, गर्मी के लिए सूर्य और शीतलता के लिए चन्द्रमा। मनुष्य ने सदियों से अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए प्राकृतिक सुविधाओं का न सिर्फ उपभोग किया, बल्कि बेरहमी से प्राकृतिक सम्पदाओं का दुरुपयोग और अत्यधिक दोहन किया है। परिणामस्वरूप भूकम्प, बाढ़, कहीं अतिवृष्टि तो कहीं अनावृष्टि का प्रकोप दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इन सबका विकराल रूप आज हमारे सामने प्रदूषण, बीमारी और बेचैनी के रूप में खड़ा हो चुका है। जल एक अमूल्य वस्तु है—अन्न उपजाने, भोजन पकाने, पीने के रूप में और शुद्ध वातावरण इन सभी रूपों में इसकी महत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता और जल का कोई विकल्प भी नहीं है।

भारत की नदियों का 70 प्रतिशत जल प्रदूषित है। कारखाने अधिकांशतः जल-प्राप्ति की सुविधा के कारण नदियों एवं जलाशयों के निकट बनाये जाते हैं। इसके साथ ही उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त होने वाले रसायन अवशिष्ट के साथ बहकर नदियों में चले जाते हैं और जल को प्रदूषित कर देते हैं। कागज, चर्मशोधन, खनिज, कीटनाशक दवाओं के निर्माण में उपयोग किया हुआ जल बहकर नदियों और तालाबों के जल को प्रदूषित कर देता है। इस प्रदूषित जल में बैक्टीरिया, पारा, सीसा, जिंक, क्रोमाइट और मैंगनीज का अंश होने के कारण भयंकर बीमारियां हो जाती हैं। आधुनिक कारखानों की वजह से गंगा जैसी पवित्र नदी की गणना विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में हो गई है। यमुना, घाघरा, गोमती नदियों का जल भी विषयुक्त हो गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार प्रतिवर्ष पांच लाख बच्चे जल प्रदूषण के शिकार होते हैं। भारत में 30 प्रतिशत से 40 प्रतिशत लोगों की मृत्यु प्रदूषित जल के कारण होती है।

ऐसा भी पाया जाता है कि नदी, तालाब या नहरों में लोग कूड़ा-कचरा, विषैले तरल पदार्थ और कभी-कभी तो जानवरों के शव भी डाल देते हैं, जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। गांव में जहां शौचालय की कमी है, वहां लोग नदी, तालाब और झरनों के किनारे मल-मूत्र त्याग करते हैं और उसी पानी से शौच क्रिया की सफाई करते हैं। तत्पश्चात् उसी नदी, तालाब या झरनों के पानी को दैनिक व्यवहार में लाने के अलावा उनके लिए अन्य और कोई विकल्प नहीं है। कहीं-कहीं गांवों या शहरों में शवों को जलाने की सुविधा न होने के कारण अनेक लोग उन्हें नदियों और नहरों में बहाकर जल प्रदूषण की समस्या को गम्भीर रूप देते हैं।

औद्योगिक क्षेत्र के बहते कचरे, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाओं का छिड़काव और घरेलू व्यवहार में आने वाले डिटरजेन्ट, पानी में घुलकर जमीन के अन्दर के जल स्रोतों को तेजी से विषैला बनाते जा रहे हैं। प्रदूषित जल जमीन की उर्वरा शक्ति पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। जल प्रदूषण का सबसे अधिक प्रकोप बच्चों पर पड़ता है। बच्चों को हैजा, पीलिया, डायरिया, पेचिश, तपेदिक तथा टाइफाइड जैसी बीमारियां होती हैं, जो मौत का भी कारण बन जाती हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि रसायनों का कुछ हिस्सा, जो उपयोग किया जाता है, पानी में बहकर नदियों और समुद्र में जाकर जमा होता है और नदी एवं समुद्रतटीय क्षेत्र में उपलब्ध जल-स्रोतों को प्रदूषित कर देता है, जिससे उन स्रोतों का पानी पीने योग्य नहीं रह पाता है। शहरी क्षेत्रों में शुद्ध और स्वच्छ जल की आपूर्ति के लिए बड़े पैमाने पर 'क्लोरीनीकरण' द्वारा जल को शुद्ध करने की पद्धति अपनायी जाती थी। किन्तु शोध और सर्वेक्षण से यह पता चला कि क्लोरीन की वजह से अनेक रोग होते हैं। यह अम्ल से मिल जाता है। इससे पानी में तैलीय पदार्थ की परत भी जम जाती है, जो जल प्रदूषण को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

भारत में 70 से 90 प्रतिशत वर्षा मानसून के चार महीनों में हो जाती है लेकिन देश के विभिन्न भागों में इन महीनों में भी एक सी वर्षा नही होती। कहीं बहुत अधिक तो कहीं नहीं के बराबर। देश तथा देशवासियों के लिए यह जरूरी है कि वर्षा के पानी के संरक्षण के लिए आवश्यक व्यवस्था की जानी चाहिए। हमारी राष्ट्रीय जल नीति में जल को समन्वित पर्यावरण की दृष्टि से ठोस आधार पर नियोजित, विकसित तथा संरक्षित करने पर जोर दिया गया है। इस नीति के अन्तर्गत पेयजल को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गयी है।

जल को संचित करके जल विभाजकों के विकास द्वारा इकट्ठा किया जा सकता है और चेकडैम, बांध और तालाबों का निर्माण करके पानी को बचाकर रखा जा सकता है। संचित जल के द्वारा भूमि संरक्षण तथा नदियों में मिट्टी के अनावश्यक कटाव को रोकने एवं मिट्टी के जमाव को कम करने में मदद मिलती है।

देश के शहरों और औद्योगिक केन्द्रों से निकलने वाला गंदा पानी स्थानीय नदियों और तालाबों में प्रवाहित कर दिया जाता है। इससे नदियों/तालाबों का पानी प्रदूषित हो जाता है और फिर वह पानी उपयोग के लायक नहीं रहता। यदि ऐसे पानी को साफ कर लिया जाए, तो विभिन्न कार्यों में इस जल को उपयोग में लाया जा सकता है। विशेष रूप से औद्योगिक संस्थानों में इसका उपयोग किया जा सकता है। संशोधित जल की औद्योगिक संस्थानों में आपूर्ति करके स्वच्छ एवं ताजे जल की मांग पर दबाव को कम किया जा सकता है और राष्ट्र द्वारा चलाये जा रहे स्वच्छ जल के अभियान में सफलता मिल सकती है।

राष्ट्रीय पेय जल मिशन

ग्रामीण जल आपूर्ति : ग्रामीण जल आपूर्ति वास्तव में राज्य का विषय है। ग्रामीण लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में जल के महत्व को देखते हुए राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन की स्थापना की गयी। इसके तहत् केन्द्रीय सरकार द्वारा काफी राशि उपलब्ध करायी जाती है, जिससे "न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम" के अन्तर्गत राज्य सरकारों के प्रयासों में मदद की जा सके।

गांवों को शुद्ध पेय जल उपलब्ध कराने के लिए निम्नलिखित मानदंड अपनाये गये हैं :

(1) मानवीय उपयोग के लिए प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 40 लीटर स्वच्छ पेयजल की आपूर्ति,

(2) मरुस्थली जिलों में पशुओं के लिए प्रतिदिन प्रति पशु 30 लीटर अतिरिक्त जल की आपूर्ति।

(3) प्रत्येक 250 व्यक्तियों के लिए एक चापाकल की व्यवस्था।

(4) मैदानी क्षेत्रों में 1.6 कि.मी. की दूरी पर जलस्रोत स्थापित किया जाना।

(5) पहाड़ी इलाकों में 100 मीटर की ऊंचाई के अन्तर पर जल स्रोत स्थापित किया जाना।

(6) राज्य सरकार द्वारा स्वाद रहित, रंगरहित तथा गंधरहित स्वच्छ जल की व्यवस्था करना।

(7) जल को हैजा, कृमि, टायफाइड तथा तपेदिक के विषाणुओं से मुक्त करना।

कार्यान्वयन के लिए गांवों/बस्तियों में पूरी तरह पेय जल की आपूर्ति को प्राथमिकता दी गयी है :

(1) उन बिना जल स्रोत वाले समस्याग्रस्त गांवों को जल उपलब्ध कराना, जो सर्वेक्षण सूची के चयन किए गए समस्याग्रस्त गांवों में से पेयजल उपलब्ध कराने से बच गये थे।

(2) प्रदूषित पेयजल वाले (रासायनिक तथा जैविक रूप से प्रदूषित पेयजल वाले) सभी गांवों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना।

(3) प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 40 लीटर पेयजल से कम की आपूर्ति वाले सभी आंशिक रूप से कवर किये गये गांवों/बस्तियों को पूरी तरह पेयजल की आपूर्ति करना।

सन् 1978 के बाद केन्द्र सरकार ने सभी प्रमुख विकास परियोजनाओं के पर्यावरण संबंधी प्रभाव के आकलन की आवश्यकता पर जोर देना शुरू किया तथा वनस्पति एवं जीव जन्तुओं पर योजनाओं के प्रभाव और लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने पर विचार किया गया। 1986 का पर्यावरण संरक्षण कानून काफी व्यापक था और जल, वायु, भूमि आदि सभी क्षेत्रों की पर्यावरण समस्याओं से सम्बन्धित था। देश में टैक्नोलाजी का इस प्रकार विकास हो कि उत्पादकता को प्रभावित किए बगैर पानी के उपभोग को कम किया जा सके। इससे गंदे पानी के बहाव की समस्या अवश्य कम होगी, जिससे प्रदूषित जल का प्रयोग कम मात्रा में सम्भव हो सकेगा। लोगों में पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा के प्रसार से समाज के सभी स्तरों पर पर्यावरण सम्बन्धी अधिकारों के बारे में जागरूकता आएगी।

हमारा उद्देश्य देश के विकास के साथ-साथ पर्यावरण संतुलन को बनाए रखना तथा जल प्रदूषण की समस्या को कम करना है। जल प्रकृति की अमूल्य देन है। जल की उपयोगिता से विश्व का हरेक प्राणी परिचित है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि "जल मानव, प्रकृति एवं सभी प्राणियों का जीवन है।"

बिहार ग्रामीण विकास संस्थान
हेहल, रांची-834005

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता :

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस
नई दिल्ली-110001

एक प्रति : पांच रुपये **वार्षिक चंदा : 50 रुपये**

बच्चे और शोर

✍अंकुश्री

वैज्ञानिक उपलब्धियों ने हमारी सुख-सुविधाओं को बढ़ा दिया है। हमारी जीवन की दैनिक क्रियाओं में आधुनिक संसाधानों का उपयोग में होने लगा है। रेडियो, ट्रांजिस्टर, टेप रिकार्डर और दूरदर्शन का उपयोग सर्वव्यापी हो गया है।

घर की तरह बाहर भी विभिन्न मोटर वाहनों की घर्घराहट और हार्न की आवाजें हमारे कानों में अनचाहे ही पड़ती रहती हैं, कुछ लोगों के घर कल-कारखाने के पास होते हैं, उन्हें मशीनों की खटर-पटर भी सुननी पड़ती है। हवाई अड्डों के पास की बस्तियों में लोगों को हवाई जहाज के इंजन से उत्पन्न शोर सुनना पड़ता है।

सामान्य से अधिक आवाज जब हमारे कानों में पहुंचती है तो वह अच्छी नहीं लगती। उस अनचाही आवाज को ही हम शोर कहते हैं। शोर को दूसरे शब्दों में ध्वनि प्रदूषण कहते हैं। वायु और जल की तरह ध्वनि भी प्रदूषित हो गयी है। ध्वनि प्रदूषण का कुप्रभाव यों तो सभी पर पड़ता है मगर बच्चे इससे ज्यादा प्रभावित होते हैं।

शोर से बच्चों में चिड़चिड़ापन आ जाता है। उनकी स्मरण शक्ति कमजोर पड़ जाती है। धीरे-धीरे वे ऊंची आवाज सुनने के आदी हो जाते हैं। शोर के प्रभाव से उनमें एकाग्रता का गुण कम हो जाता है। ये सारी स्थितियां बच्चों के मानसिक विकास में बाधक होती हैं।

बच्चों के शरीर पर भी शोर का असर पड़ता है। चिड़चिड़ापन आ जाने और स्मरण तथा श्रवण शक्ति कम हो जाने से शारीरिक विकास भी प्रभावित होता है। यहां तक कि बच्चों का रक्तचाप बढ़ जाता है और वे हृदय रोग से भी ग्रस्त हो जाते हैं। स्वाभाविक है कि ऐसे बच्चे फिर सामान्य बच्चों की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। ऐसे बच्चे दीर्घायु भी नहीं होते। अस्वस्थ और अल्पायु बच्चे देश के लिये कितने उपयोगी हो सकते हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

सामान्य तौर पर दिन में 55 डेसीबल और रात में 45 डेसीबल तक की आवाज आदमी के लिये सहनीय मानी गयी है। लेकिन अभी हमारे महानगरों में 60 डेसीबल से 90 डेसीबल तक की आवाजें उत्पन्न होती रहती हैं। यह पिछले दस वर्षों की तुलना में दुगुनी हो गई है। शून्य डेसीबल के बाद आवाज की शुरुआत होती है, लेकिन 20 डेसीबल तक की आवाज कान सटाने पर ही सुनी जा सकती है। आम बोलचाल की आवाज 40 डेसीबल होती है। बादल की गड़गड़ाहट और हवाई जहाज के इंजन की आवाज 110 डेसीबल होती है।

आदमी के कान के लिये 70 डेसीवल तक की आवाज हानिरहित होती है, जबकि 80 डेसीबल की आवाज चिड़चिड़ाहट पैदा करती है। 110 डेसीवल के ऊपर की आवाज कान को बहरा बना देती है तथा 165 डेसीबल की आवाज से कान का पर्दा फट जाता है। एक प्रयोग के दौरान 175 डेसीवल के शोर में चूहों को रखा गया तो वे मर गए। इससे यह पता चलता है कि अत्यधिक शोर जानलवा भी हो सकता है।

टेप, रेडियो, लाउडस्पीकर, वायुयान, रेल, मोटर, स्कूटर, उद्योग आदि के कारण बच्चे एकाग्र होकर कक्षा में नहीं बैठ पाते। शोरगुल से छात्रों के बोलने, सोने और दिमागी काम करने की क्षमता पर विपरीत असर पड़ता है। ध्वनि तरंगों के कंपन के अधिक दवाव के कारण स्नायु तंत्र निष्क्रिय पड़ने लगते हैं। एक अध्ययन से पता चला है कि 6 वर्ष तक शोरपूर्ण वातावरण में पढ़ने के वाद छात्रों में वार वार सिरदर्द होने लगता है और उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है।

शोर मनुष्य का अदृश्य शत्रु है, जिससे वह पूरी तरह नहीं बच सकता, लेकिन इसके प्रभाव को कम अवश्य किया जा सकता है।

घर में बच्चों को आवश्यक रूप से शोरमय वातावरण में नहीं रखना चाहिए। वाद्ययन्त्रों को धीमी आवाज में बजाया जाए और भारी वाहन वाली सड़कों से बच्चों के आवागमन को रोका जाए। दीपावली या विवाहादि उत्सवों के समय आतिशवाजी के समय तेज आवाज करने वाले पटाखों को नहीं छोड़ा जाए।

विद्यालयों के आसपास शोर उत्पादक कारकों को फटकने नहीं देना चाहिये। विद्यालय भवनों की बनावट भी बाहरी शोर से बच सकने योग्य होनी चाहिए। पेड़-पौधे ध्वनि को अवशोपित कर

(शेष पृष्ठ 40 पर)

सावधान! मानव-जाति संकट में है

शुभंकर बनर्जी

क्या आप जानते हैं कि मानव के अस्तित्व को शीघ्र ही बहुत बड़े संकट का सामना करना होगा। हां! यह बात अवश्य है कि फिलहाल तो ऐसा कोई संकट मोटे तौर पर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। परन्तु मानव के सामान्य स्वास्थ्य में जिस प्रकार से हानि हो रही है यदि उस पर वैज्ञानिक ढंग से कोई नियंत्रण नहीं किया गया तो मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है।

रोगों में बढ़ोत्तरी

पृथ्वी के श्रेष्ठ जीव मानव का स्वास्थ्य एक खतरनाक दिशा की ओर बढ़ रहा है। यह एक कटु सत्य भी है कि इसके लिए मानव नाम का यह सबसे तेज बुद्धि वाला प्राणी स्वयं ही जिम्मेदार है। उदाहरणतः बढ़ते हुए संक्रामक रोगों के प्रकोप को लिया जा सकता है। तमाम स्वास्थ्य सुविधाओं को मुहैया कराने के बावजूद तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के विशेष प्रयासों को व्यर्थ सिद्ध करते हुए मलेरिया, चेचक, गलाघोंट ज्वर आदि रोगों पर पूर्ण रूप से नियंत्रण नहीं पाया जा सका है। हृदय रोग, रक्तचाप तथा सांस सम्बन्धी रोगों का आक्रमण तो साधारण बात हो गई है। पहले केवल अमीर लोगों को इन रोगों का सामना करना होता था परन्तु आजकल आम जनता भी इन रोगों की चपेट में आने लगी है।

यह कहना गलत होगा कि आम जनता की रोगग्रस्तता में यह वृद्धि केवल विकासशील देशों में ही है बल्कि अमरीका, कनाडा, फ्रांस, ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में भी रोगों के संक्रमण में वृद्धि हुई है। एड्स जैसी महा व्याधि ने तो पूरे विश्व को ही हिला दिया है।

शुरू से ही सूर्य की किरणों को मानव समाज की शक्ति का स्रोत माना जाता रहा है, जबकि आज स्थिति यह है कि कनाडा, अमरीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि विकसित देशों में नागरिकों को चेतावनी दी गई है कि सूर्य स्नान करना खतरनाक सिद्ध हो सकता है। पर्यावरणीय हानि के कारण सूर्य स्नान के शौकीन लोगों में चर्म कैंसर होने की आशंका बढ़ जाती है।

भारत में भी इस प्रकार के ऐसे अनेक रोग फैल रहे हैं जिनकी सही वजह बताने में चिकित्सा वैज्ञानिक असफल हैं। ऐसे कई रोग हैं जो जानलेवा सिद्ध हो रहे हैं परन्तु उनकी वैज्ञानिक व्याख्या करना अभी कठिन है। जब भी किसी रोग के बारे में हमें कुछ भी पता नहीं चलता है हम इन्हें विषाणुओं (वायरस) का प्रकोप बना देते हैं। जबकि रोगों के असली कारणों का हमें पता लगाना होगा। महज वायरस के ऊपर दोष थोपना ही काफी नहीं है। दरअसल सच्चाई यह है कि इसका असली कारण हम मानव स्वयं हैं। हमने प्रकृति का बेतहाशा शोषण करके इन दुष्परिणामों को जन्म दिया है।

मानव स्वास्थ्य का मौसम से संबंध

प्रश्न उठता है कि स्थिति पर काबू कैसे पाया जाए? यदि हम समस्या की गहनता पर विचार करें तो पता चलता है कि प्रकृति के साथ अंधाधुंध खिलवाड़ से ही ऐसी स्थिति पैदा हुई है। कई प्रकार के जान लेवा तथा संक्रामक रोगों का सिलसिला-सा बन चुका है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध चिंतक हिपोक्रेट्स के विचार उल्लेखनीय हैं। औषधि विज्ञान के क्रमबद्ध विकास के लिए हिपोक्रेट्स का योगदान इतना महत्वपूर्ण है कि उन्हीं की याद में चिकित्सा-व्यवसायिओं द्वारा शपथ ली जाती है जिसे 'हिपोक्रेटिक ओथ' कहा जाता है। उन्होंने कहा था—"औषधि एवं चिकित्सा सम्बन्धी उचित अनुसंधानों के लिए सबसे पहले, विभिन्न ऋतुओं तथा स्वास्थ्य पर इनके प्रभावों की संभावना का पर्याप्त ज्ञान होना परम आवश्यक है।" लगभग 2500 वर्ष पहले औषधि विज्ञान के क्रमबद्ध विकास के लिए प्रमुख भूमिका निभाने वाले इस महान चिंतक ने यह बात कह दी थी जो आज भी सच है। उन्होंने स्वयं तथा अपने समकालीन चिकित्सकों के अनुभवों के आधार पर मौसम तथा मानव-स्वास्थ्य सम्बन्धी सामग्री का संकलन किया तथा उस पर विस्तार से अध्ययन भी किया। जबकि उस काल में मौसम विज्ञान सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने की पर्याप्त सुविधा नहीं थी बल्कि यह कहना ज्यादा उचित होगा कि मौसम विज्ञान अपनी शैशवावस्था में ही था। फिर भी हिपोक्रेट्स ने वायु, मौसम एवं जलवायु इत्यादि का मानव के स्वास्थ्य पर किस प्रकार से प्रभाव होता है इस पर काफी विस्तृत जानकारी प्राप्त कर ली थी। उनके सभी अनुसंधानों तथा प्रयोगों से जो परिणाम सामने आये उससे यह बात आश्चर्यजनक रूप से सिद्ध हो चुकी है कि प्रायः

सभी रोगों का मुख्य कारण वायु तथा मौसम के विभिन्न संयोगों का मानव के मन तथा शरीर पर पड़ने वाला विपरीत प्रभाव ही हैं। सामान्य तौर पर आज के युग में हिपोक्रेट्स के ज्यादातर प्रख्यानों की मान्यता शायद कम हो गई हो परन्तु फिर भी कुछेक विशेष क्षेत्र में वे आज भी मान्य हैं। उदाहरणतः उनका यह कहना कि धुंधली दृष्टि, सिर का भारीपन तथा सुनने में परेशानी का कारण दक्षिणी हवाएं हैं। यह उल्लेखनीय है कि वे यूनान के रहने वाले थे। दूसरी ओर उन्होंने कहा कि उत्तरी हवा की वजह से खांसी, गले में खराबी, अंतड़ियों में कठोरपन तथा सीने में तकलीफ आदि की आशंका होती है।

बेशक उनके उपयुक्त विचार आज के युग में कुछ अजीब से लगते हों परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि उनका दिया हुआ यह मूल मंत्र आज भी लागू होता है कि जलवायु मनुष्य जाति के स्वास्थ्य को सर्वाधिक प्रभावित करती है।

वैसे यह एक प्राकृतिक तथ्य है कि यदि सुबह उठकर मानव को शीतल बयार का आनन्द मिले और वह भी ग्रीष्म ऋतु की बात हो या शरद काल में गुनगुनी धूप खिली हो तो मन एकाएक प्रसन्न हो ही जाता है। ऐसा लगने लगता है कि मानो स्फूर्ति की अनायास आपूर्ति हुई है तथा मुख से बरबस ही दो शब्द निकल आते हैं "वाह क्या मौसम है।" ठीक इसके विपरीत यदि ग्रीष्म ऋतु में सुबह ही उमस भरी भयंकर गर्मी हो या शीत ऋतु में किटकिटाती ठंडी हवा बह रही है तो मानव की कार्य-क्षमता स्वाभाविक रूप से कम हो जाती है।

सच बात तो यही है कि मानव के स्वास्थ्य पर जलवायु का प्रभाव तो सृष्टि के आरंभ से ही रहा है। परन्तु प्रश्न यह है कि आज के युग में बढ़ते हुए प्रदूषण के बीच में जलवायु के प्रतिकूल प्रभाव से मानव की रक्षा कैसे हो सकती है। इस प्रश्न के साथ मानव के अस्तित्व की रक्षा का भी सीधा सम्बन्ध है।

उदाहरणतः तापमान का मानव के सुख के साथ सीधा सम्बन्ध होता है परन्तु इस सुखद अनुभव के साथ कई अन्य कारकों का भी सहयोग होना जरूरी है जैसे आर्द्रता, वायु (उसकी दिशा तथा गति) तथा धूप की तीव्रता आदि। विशेष करके आर्द्रता हमारे स्वास्थ्य को अत्यंत प्रभावित करती है। गर्मी के दिनों में यह विशेष रूप से अनुभव किया जा सकता है। यदि हवा गर्म हो जाए तो मानव स्वास्थ्य पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ता है। अतः पर्यावरण वैज्ञानिकों ने मानवीय सुख के सूचकांक को "प्रभावी ताप" की परिभाषा दी है। यह "प्रभावी ताप" मानव की मानसिक कार्य-क्षमता को काफी हद तक प्रभावित करता है। ज्यादा गर्म और आर्द्र वातावरण में कार्य-क्षमता पर काफी प्रभाव पड़ता है जिसकी वजह से निरंतर मानसिक एकाग्रता की जरूरत पड़ती है। यदि प्राकृतिक परिस्थिति थोड़ी-बहुत खराब हो तो मानव कुछ देर तक अपनी क्षमता का प्रयोग कर लेता है। परन्तु अत्यधिक प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थिति होने की दशा में मानव की कार्य-क्षमता तेजी से घट जाती है।

उपचार विधि से रोगों का निदान करने के लिए यथायोग्य स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना की गई है। इस प्रकार के स्वास्थ्य केन्द्रों में रोगियों को जान बूझकर एक विशेष जलवायु की स्थिति में रखा जाता है। यह भी प्रमाणित हो चुका है कि कई परिस्थितियों में जलवायु उपचार तो किसी रोगी के लिए औषधि सेवन या शल्य चिकित्सा से भी ज्यादा लाभकारी तथा कम खर्च वाला सिद्ध होता है।

पृथ्वी के तापमान में बढ़ोत्तरी जारी

साधारण मानव के स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के कारण प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दुष्प्रभावों की बढ़ती हुई आशंका से पूरे विश्व के वैज्ञानिकों में व्यापक चिंता हो रही है। इस विषय पर कई प्रकार के अध्ययन भी किए जा रहे हैं। यह भी पाया गया है कि यदि ग्रीन हाऊस गैसों की वर्तमान उत्सर्जन की दर पर रोक लगाने में सफलता न मिली तो परिस्थिति विस्फोटक हो सकती है। धरती का औसत तापमान आगामी दशकों में इतना बढ़ जाएगा कि मानव के लिए उसे सहन करना कठिन हो जाएगा। इस परिप्रेक्ष्य में किए गए विश्लेषणों से निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं :—

(1) वर्ष 2030 तक धरती के औसत तापमान में 3 डिग्री से. तक की वृद्धि होने की आशंका है। तापमान वृद्धि उत्तरी गोलार्द्ध के उच्च अक्षांश पर स्थित क्षेत्रों में विशेष रूप से अपना प्रभाव डालेगी। भूमण्डल के इस क्षेत्र में तापमान के 10 डिग्री तक बढ़ जाने की आशंका है।

(2) धरती के तापमान में वृद्धि की वजह से दक्षिणी तथा उत्तरी ध्रुव पर जमी बर्फ के पिघलने से आगामी शताब्दी के बीच तक समुद के जलस्तर के एक से तीन मीटर तक ऊपर उठ जाने की आशंका है।

(3) हालांकि जलवायु परिवर्तनों का प्रभाव आने वाले दशकों में धीरे-धीरे ही होगा परन्तु इसके दूरगामी प्रभाव खतरनाक होंगे।

(शेष पृष्ट 40 पर)

महिलाओं और पुरुषों में असमानताएं दूर करने पर बल

राधा विश्वनाथ

एक ऐसे देश में जहां परम्पराएं, रीति-रिवाज और विभिन्न संस्थाओं की भरमार हो, वहां पर भारतीय महिला के प्रति एक जैसा दृष्टिकोण बना पाना लगभग असंभव-सा कार्य है। भारी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भेद-भावों के कारण देश की 40 करोड़ महिलाएं लिंगभेद संबंधी असमानताओं से किसी न किसी रूप में प्रभावित हैं। ये ऐसी असमानताएं और समस्याएं हैं जिनके सामने कोई क्षेत्र-विशेष या देश-विशेष मायने नहीं रखता, इसका संबंध समानता तथा न्याय के लिए महिलाओं के सदियों से चले आ रहे संघर्ष से है।

महिला आन्दोलन की शुरुआत

इस सदी के आरंभ में ही समाज और सामाजिक परिवर्तन में पुरुषों के साथ समान स्तर पर भागीदारी के लिए सदियों से चली आ रही महिलाओं की लड़ाई ने एक आंदोलन का रूप ले लिया था। अमरीकी महिलाओं ने 1909 में फरवरी के आखिरी दिन प्रथम राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया था। अगले ही साल उन्होंने इस दिन को अंतर्राष्ट्रीय स्तर का दर्जा दिया, जब कोपनहेगन में समाजवादी अंतर्राष्ट्रीय बैठक में महिला दिवस मनाने का निर्णय किया गया। इसका आशय विश्व भर में महिलाओं को अपने अधिकारों को प्राप्त करने में सहायता देना और उनके अधिकारों तथा स्वतंत्रता को सम्मान प्रदान करना था। कुछ सालों बाद 8 मार्च की तारीख इस दिन का पर्याय बन गई।

लगभग उन्हीं दिनों भारत में भी कई महिला आंदोलन चल रहे थे जिनका प्रमुख मुद्दा था महिलाओं की शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा देना। स्त्री पुरुष की समानता का सिद्धांत भारतीय दर्शन में इतना आधारभूत है कि स्वतंत्रता आंदोलन में पुरुषों और स्त्रियों ने आजादी की लक्ष्य-प्राप्ति में समान योगदान दिया था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी 1931 में अपने मौलिक अधिकार प्रस्ताव में स्त्री-पुरुष समानता के सिद्धांत को एक मार्ग-दर्शक निर्देश माना था और स्वतंत्रता के बाद देश की सभी योजनाओं में इस निर्देश की मान्यताएं परिलक्षित हुईं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है कि देश की प्रगति का महिलाओं के विकास से सीधा संबंध है। सन् 1950 में अपनाए गये संविधान में स्त्री और पुरुष में समानता का प्रावधान रखा गया।

भारत में महिला आन्दोलन की एक विशेषता यह रही है कि इसका सरकार के साथ किसी न किसी रूप में संबंध रहा है। परिणाम यह हुआ कि 1971 में ही भारत सरकार ने देश में महिलाओं की स्थिति पर एक समिति का गठन किया। यह एक ऐसा कदम था जो संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष और अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक की घोषणा से पांच वर्ष पहले ही उठाया गया। संविधान में निहित स्त्री-पुरुष की समानता को वास्तविक रूप देने के लिए भी समिति ने कुछ सुझाव दिए।

महिला दशक

1975 में मेक्सिको में प्रथम विश्व महिला सम्मेलन आयोजित हुआ। इसके परिणामस्वरूप अगले वर्ष से अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक की घोषणा हुई। इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से माना गया कि महिलाओं और बच्चों के साथ जो भी होता है उसका सभी देशों के समग्र विकास पर असर पड़ता है। सन् 1980 में द्वितीय संयुक्त राष्ट्रीय सम्मेलन में महिला दशक के द्वितीय चरण के लिए एक कार्ययोजना बनाई गई। नैरोबी में हुए तीसरे सम्मेलन में अंतर्राष्ट्रीय दशक के दौरान विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा महिलाओं के प्रति चेतना जागृत करने, दृष्टिकोण बदलने और उनके परिणामस्वरूप हुए सुधार और विकास की गति को बनाए रखने के लिए अनेक कार्यक्रम बनाए गए। नैरोबी घोषणा में यह स्वीकार किया गया कि यद्यपि शिक्षित और बड़े पदों पर तथा उच्च राजनीतिक स्तरों पर महिलाओं की संख्या में अपेक्षाकृत वृद्धि हुई है किन्तु सामान्य तौर पर महिलाएं अपेक्षाकृत और भी गरीब होती चली गईं। उनका शोषण जारी है।

भारत ने इन सभी सम्मेलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया। उसने नैरोबी घोषणा में महिलाओं के उत्तरोत्तर विकास के लिए अपनाई गई नीतियों को लागू करने के लिए कई नीतिगत पहलें कीं। इनमें शामिल है : सन् 2000 तक महिलाओं के लिए राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य योजना, बालिकाओं के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना, महिला कैदियों पर राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति आदि। इन सभी पहलों को

वास्तविक रूप देने, महिलाओं को वांछित अधिकार दिलाने, उनमें कानूनी शिक्षा का प्रसार करने, लिंग-भेद पर आधारित असमानताओं को दूर करने और महिलाओं में शिक्षा और जागृति पैदा करने के लिए सरकार ने महिला समृद्धि योजना शुरू की और राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना की। इन कार्यक्रमों और नीतियों को संस्थागत सहायता प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग तथा राष्ट्रीय महिला संसाधन केन्द्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

चौथा विश्व महिला सम्मेलन

अंतर्राष्ट्रीय महिला दशक के दौरान विभिन्न देशों में हुए अनुभव के आधार पर यह पाया गया कि असमानता का स्तर हर जगह अलग-अलग है, परंतु इसका ढांचा लगभग सभी देशों में एक जैसा है। गरीबी एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें महिलाओं की स्थिति और अधिक दयनीय है। विश्व में लगातार चले आ रहे आर्थिक संकट और आधारभूत समीकरण दोनों ही रहे हैं जिनके फलस्वरूप सभी देशों में गरीबी के स्तर में लगातार वृद्धि हो रही है। इस पर विश्वव्यापी चिंता प्रकट की गई है और इस वर्ष सितम्बर में चीन की राजधानी पेइजिंग में होने वाले चौथे विश्व महिला सम्मेलन में गरीबी का मुद्दा 10 शोचनीय तथा संवेदनशील क्षेत्रों में सबसे ऊपर रहेगा।

पेइजिंग सम्मेलन में प्रस्तुत किए जाने वाले अपने दस्तावेज में भारत ने इस बात पर गहरी चिंता व्यक्त की है कि आंतरिक उथल-पुथल और परिस्थितियों के कारण पिछले दो दशकों में महिला आंदोलनों ने जो कुछ भी पाया है उस पर पानी फिर जाने की आशंका है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में संसाधनों का गरीब विकासशील देशों से सम्पन्न राष्ट्रों की ओर प्रवाह किया गया है। इसने महिलाओं को आर्थिक और प्रौद्योगिकी दृष्टि से हाशिये पर रख दिया है और इसके फलस्वरूप महिलाओं की स्थिति और भी शोचनीय हो जाएगी। आर्थिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया में निश्चित रूप से खुले बाजार की अर्थ व्यवस्था पर बल दिया जा रहा है और इससे गरीब महिलाओं पर भारी बोझ पड़ सकता है। इस चेतावनी के संकेत हमारे दस्तावेज में जगह जगह दिए गए है।

विश्व सम्मेलन में महिलाओं के विकास में आने वाली रुकावटों का विश्लेषण और उनको दूर करने संबंधी प्रयासों पर विचार किया जाएगा। अगली शताब्दी में उठने वाली चुनौतियों और मांगों के परिप्रेक्ष्य में समाज का किस प्रकार पुनर्निर्माण किया जाए यह भी सम्मेलन का विषय रहेगा। विगत अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के मुख्य उद्देश्य "शांति, विकास, असमानता दूर करने के लिए कार्य योजना" को जारी रखा जाएगा।

कोपनहेगन में इस महीने होने वाले सामाजिक विकास विश्व सम्मेलन में भी अंतर्राष्ट्रीय आव्रजन के परिप्रेक्ष्य में महिलाओं के संबंधों पर विशेष बल दिया जाएगा जिसमें महिला आव्रजन श्रमिक समस्या संबंधी मसले शामिल होंगे। महिला सम्मेलन के प्रमुख उद्देश्यों—समानता, विकास और शांति—पर विशेष बल दिया जाएगा। इस दृष्टिकोण से आशा है कि भविष्य में महिलाओं और पुरुषों में लिंग-भेद के आधार पर असमानताओं को दूर करने के लिए पुरजोर प्रयास जारी रहेंगे।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में "पाठकों के विचार" स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

सामाजिक वानिकी विस्तार व पर्यावरण संरक्षण

डा. विपिन कुमार

वन ऐसे संसाधन हैं जिन्हें पुनः पैदा किया जा सकता है। वनों ने विभिन्न प्रकार की सामग्री और सेवाएं उपलब्ध कराकर देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार लाने में भी वनों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश की अर्थ व्यवस्था के संतुलन को बनाये रखने के लिए एक तिहाई (33 प्रतिशत) क्षेत्र पर वन होने चाहिए—पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत और मैदानी क्षेत्रों के लिए 20 प्रतिशत वन क्षेत्र आदर्श माना गया है। आजादी के समय देश में 7.50 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर जंगल था जो अभी घटकर 7.47 करोड़ हेक्टेयर हो गया है। यह विश्व के कुल वन क्षेत्र का मात्र दो प्रतिशत है। भारत में कुल क्षेत्रफल के 22.7 प्रतिशत, थाईलैण्ड में 18 प्रतिशत, अमरीका में 33 प्रतिशत, रूस में 44 प्रतिशत, स्वीडन में 56.5 प्रतिशत, जापान में 62 प्रतिशत और म्यांमार (बर्मा) में 68 प्रतिशत भू-भाग पर वन पाए जाते हैं। विश्व में 29.9 प्रतिशत भू-भाग पर वन हैं। कृषि प्रधान देश होने के नाते वनों ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है—कारण कि पेड़-पौधों की जड़ें तथा पत्तियां उपजाऊ तत्व प्रदान करके मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। वनों से अनेक पदार्थ जैसे लकड़ी, कत्था, गोंद, तेल, कुनैन, जड़ी-बूटियां आदि प्राप्त होते हैं। देश में अनेक उद्योग जैसे—कागज, कत्था, दियासलाई, लाख, रेसिन, खेल का सामान, फर्नीचर आदि वन पदार्थों पर ही आधारित हैं। वनों से भारत सरकार को जहां एक ओर राष्ट्रीय आय में एक प्रतिशत का योगदान मिल रहा है वहीं दूसरी ओर, करोड़ों लोगों को रोजगार भी मिला हुआ है। वनों की अन्धाधुन्ध कटाई पर पर्यावरणविदों, वैज्ञानिकों और समाजसेवियों ने चिन्ता व्यक्त की है और कहा है कि इसका पर्यावरण संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि प्राचीन काल से ही वेद, पुराण, ऋषि-मुनियों, राजा-महाराजाओं ने वृक्षों के महत्व को स्वीकारा और वृक्षारोपण पर काफी बल दिया। हमारी संस्कृति, जिसे अरण्य की संस्कृति कहते हैं, में अरण्य ही विलुप्त होते जा रहे हैं। "चरक संहिता" की मान्यता है कि वनों का विनाश मानव एवं राष्ट्र कल्याण हेतु सर्वाधिक चिन्ता का विषय है इसीलिए वन संरक्षण की व्यवस्था अपेक्षित है। यथा—

"विगुणेष्वपितु खलुएतेषु जनपदोध्वंशन
करेषुभावेषुजेनोपयाय मानानां न भयं भवति रोगभ्यशति"

(चरक संहिता विमान स्थल 3/11
स्रोतः हिन्दुस्तान, 13 जून 95, पृ. सं. 6)

अर्थात—जंगलों का नाश होना मानव जाति एवं राष्ट्र के लिए सबसे खतरनाक है। सामाजिक कल्याण से वनस्पति का सीधा संबंध है। प्राकृतिक पर्यावरण के प्रदूषण और वनस्पति के विनाश के कारण अनेक ऐसी बीमारियां पैदा होती हैं, जो देशवासियों एवं राष्ट्र को बर्बाद कर देती हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में चिकित्सीय गुणों को धारण करने वाले वनस्पति ही प्रकृति को समृद्ध करके मनुष्य के उन रोगों को शान्त करने में सहायक होते है।

'सामाजिक वानिकी' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'बेस्टाबी' ने 1968 में नौवें राष्ट्रमंडल वानिकी सम्मेलन में दिए गए अपने भाषण में इस प्रकार किया था—"सामाजिक वानिकी एक ऐसी वानिकी है, जिसका उद्देश्य सामुदायिक हितों का पुनर्सर्जन और पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान देना है।" संक्षेप में 'सामाजिक वानिकी' की परिभाषा इस प्रकार भी की जा सकती है—"एक ऐसी वानिकी जो लोगों द्वारा लोगों के लिए हो और उनकी पांच आवश्यकताओं—चारा, भोजन, फल, रेशे और उर्वरक—फोडर, फूड, फ्रूट, फाइबर और फर्टिलाइजर की पूर्ति कर सके।" सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य 'राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976)' ने निर्धारित किये हैं :

1. ईंधन उपलब्ध कराना ताकि गोबर का इस्तेमाल खाद के रूप में किया जा सके।
2. फलों के उत्पादन में वृद्धि करके देश के खाद्य संसाधनों की बढ़ोतरी में योगदान करना।
3. भूमि-संरक्षण में सहायता करना तथा मिट्टी की उर्वरता को नष्ट होने से बचाना।
4. खेतों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उसके चारों तरफ वृक्षारोपण करना।

5. लोगों में पौधों के प्रति चेतना और प्रेम जगाना।
6. भू-परिदृश्य के लिए सजावटी व छायादार वृक्ष लगाना।
7. छोटे भूखंड और इमारती लकड़ी उपलब्ध कराना जिससे कृषि औजार, भवन निर्माण और बाड़ लगायी जा सके।
8. गांवों, शहरों, खेतों और सार्वजनिक भूमि पर वृक्षारोपण कार्यक्रम को लोकप्रिय बनाना ताकि उन स्थानों की सुन्दरता और उपयोगिता बढ़ायी जा सके।
9. मवेशियों के लिए पत्तियों के रूप में चारा उपलब्ध कराना ताकि सुरक्षित व संरक्षित वनों में पशु नहीं चराये जाएं।

राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने सामाजिक वानिकी को तीन वर्गों में विभाजित किया है :

- कृषि वानिकी
- ग्रामीण वानिकी और
- शहरी वानिकी

कृषि वानिकी

इसकी अवधारणा एक ऐसी तकनीक का प्रतिपादन करती है, जो लाभकारी उद्देश्यों के लिए कृषि को वानिकी के साथ जोड़ती है—जिसमें देश की अर्थ व्यवस्था में एक हरित क्रांति की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। कृषि वानिकी से कृषकों को होने वाले लाभ निम्नांकित हैं :

(क) कृषकों की संतुलित अर्थव्यवस्था का विकास और उन्हें आत्मनिर्भर बनाना।

(ख) उन्हें ईंधन की लकड़ी, छोटी मोटी इमारती लकड़ी और चारा उपलब्ध कराना।

(ग) राजस्व का अतिरिक्त स्रोत।

कृषि वानिकी खेतों की सामान्य पैदावार और गुणवत्ता को प्रभावित किये बिना ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करती है। हमारे देश में पर्यावरण संरक्षण की समस्या और चारा, इमारती लकड़ी तथा ईंधन की लकड़ी की दुर्लभता को दूर करने का एकमात्र समाधान किसानों द्वारा स्वयं वृक्षारोपण के जरिए कृषि वानिकी को बढ़ावा देना है। राज्य वन विभागों के संसाधन देश में पड़ी खाली निजी भूमि पर वृक्षारोपण करने व उनका रख-रखाव करने के लिए अपर्याप्त हैं। कृषि वानिकी के जरिए उसका विकेन्द्रीकरण होता है और व्यक्तिगत स्वामित्व होने के कारण इसकी देखरेख सही तरीके से हो पाती है। अतः कृषि वानिकी हरित क्रांति को सफल बनाने का एक महत्वपूर्ण साधन है।

ग्रामीण वानिकी

इसे विस्तार वानिकी के नाम से भी जाना जाता है—इसके जरिए सामुदायिक और पंचायती भूमि, विकृत भूमि, सड़क और रेलवे लाइन के साथ-साथ, नहरों के किनारों आदि पर वृक्षारोपण किया जाता है ताकि ग्रामीण लोगों की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें। इसके उद्देश्य भी कृषि वानिकी के समान हैं—ग्रामीण समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करना। लेकिन इसमें एक मौलिक अन्तर यह है कि जहां कृषि वानिकी में भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत होता है वहीं ग्रामीण वानिकी में यह सामुदायिक होता है। स्वामित्व सामुदायिक होने से वनों के संरक्षण की समस्या उत्पन्न होती है, कारण कि परियोजना के कारगर कार्यान्वयन के लिए समूचे समुदाय को सहभागी बनना आवश्यक हो जाता है।

शहरी वानिकी

इसका उद्देश्य शहर के लोगों के दरवाजे तक पेड़ों को पहुंचाना है। इसके सहारे शहरी क्षेत्रों के सौन्दर्यीकरण पर बल दिया जाता है। विभिन्न मौसमों के मुताबिक सुन्दर व आकर्षक किस्म के फल और फूलदार पौधे सड़क के दोनों तरफ, कस्बों के निकट, नहर के किनारों, गांवों व शहरों में लगाये जाते हैं। शहरी वानिकी में घरों, मार्गों और खाली पड़ी भूमि की सजावट तथा कस्बों और शहरों में सघन वृक्षारोपण पर बल दिया जाता है। बम्बई में बोरिविली पार्क, लखनऊ में कुकरेल वन, बंगलौर में वानटनाटा पार्क इसके कुछ उदाहरण हैं।

पर्यावरण को स्वच्छ बनाने और आर्थिक-सामाजिक उत्थान के साथ सामाजिक वानिकी का प्रत्यक्ष व गहरा संबंध है। सामाजिक-आर्थिक उत्थान से शहरों और गांवों दोनों ही स्थानों पर लोगों के जीवन-स्तर में सुधार आता है। सामाजिक वानिकी का उद्देश्य आर्थिक और पर्यावरण विषयक दोनों ही होता है। अकेले पर्यावरण को ही देखें, जब सामाजिक वानिकी को विस्तृत एवं सफलतापूर्वक लागू किया जाता है तो उसके कई रचनात्मक प्रभाव सामने आते हैं, जैसे जलीय संतुलन में सुधार, मिट्टी की भौतिक परिसंपत्तियों में सुधार और उसकी जल-शोषण शक्ति में वृद्धि, नमी को धारण करने की शक्ति में सुधार, सतह के जल के बहाव में कमी और जलाशयों, नदियों, धाराओं आदि के

अवसादन की रोकथाम के उपाय। सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के पर्यावरण से संबंधित घटक निम्नलिखित हैं :

1. जनसंख्या के बीच में विकृत वनों की सुरक्षा के लिए वृक्षारोपण कार्यक्रम को बढ़ावा देना।
2. तालाबों के तटों और उबड़-खाबड़ भूमि पर वृक्षारोपण करना।
3. सीमांत और अन्य खेतों पर वानिकी को बढ़ावा देना।
4. चरागाह और वन चरागाहों का विकास।
5. सड़कों, नहरों आदि के किनारों पर वृक्षों की कतारें लगाना।
6. सामुदायिक तथा बेकार पड़ी सरकारी भूमि पर वृक्षारोपण करना।
7. घरों के अहातों, खेतों की सीमाओं, खेत के भीतर विकीर्ण वृक्षारोपण, विशेषकर निर्जल और अर्द्ध निर्जल क्षेत्रों में वृक्षारोपण।

यदि उपरोक्त कार्यक्रमों को लोगों की सक्रिय हिस्सेदारी के साथ कारगर ढंग से लागू किया जाए तो इससे चारा, ईंधन, रेशा, इमारती लकड़ी और कुटीर उद्योगों के लिए कच्चे माल की ग्रामीण लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं। वन विभिन्न प्रकार के कुटीर व ग्रामोद्योगों का स्रोत हो सकते हैं। वनों पर आधारित उद्योगों में लाख और टंस्सर की खेती, बीड़ी बनाना, मधुमक्खी पालन, टोकरियां बनाना, रस्सी बनाना, रेशम के कीड़े पालना आदि शामिल है। इससे ग्रामीणों को लाभकारी रोजगार उपलब्ध हो सकता है।

लाख का उत्पादन भी वानिकी पर आधारित एक महत्वपूर्ण उद्योग है जिसके विकास की काफी संभावनाएं हैं। रेसिन भी वन आधारित उद्योग है, जो काफी महत्वपूर्ण है। इसे देवदार के पेड़ से निकाला जाता है। उसी पेड़ से टयुरेपेंटाइन की भी प्राप्ति होती है। वनों से मिलने वाला अन्य महत्वपूर्ण पदार्थ कुनेन है जो सिंकोना के पेड़ से मिलता है। खजूर के पेड़ों के रस से तैयार सीरा और ताड़ी का उत्पादन भी महत्वपूर्ण कुटीर उद्योग है। इन वस्तुओं के अलावा कई समृद्ध वन उत्पादन हैं जिनका इस्तेमाल कुटीर उद्योगों के विकास में किया जा सकता है, जैसे चन्दन की लकड़ी, बेंत, चटाई, शहद, विभिन्न प्रकार के तेल, औषधियों में काम आने वाले तत्व आदि, जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान हैं। यदि इन उद्योगों को व्यवस्थित और जोरदार ढंग से विकसित किया जाए तो निश्चय ही ग्रामीण क्षेत्रों से बेरोजगारी की समस्या का कम किया जा सकता है।

समस्याएं

सामाजिक वानिकी कार्यक्रम के अंतर्गत निम्नांकित समस्याएं उत्पन्न होती हैं :

1. वृक्षों की अवैध कटाई : हमारे समाज में यह बुराई काफी गहराई तक फैल गई है कि वन सरकारी संपत्ति है, ऐसा मानकर कुछ लोग पेड़ों की अवैध कटाई करते हैं। सामान्यतया ऐसा कार्य असामाजिक तत्वों द्वारा किया जाता है। अतः वनों के प्रति यदि लोग जागरूक रहें तो वृक्षों की अवैध कटाई पर रोक लगाना संभव हो सकता है।

2. पशु चराने की समस्या : सरकारी संपत्ति मानकर लोग वनों में पशु चराई बे-रोक टोक करते हैं। अत्यधिक चराई से वनों का विनाश हो जाता है। इससे भूमि कटाव की समस्या उत्पन्न होती है। यदि लोग इसमें सहयोग करें तो इस बुराई पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है।

3. अवैध कब्जों की समस्या : लोग जमीन के भूखे हैं - वे जमीन और वनों पर अवैध कब्जा जमा लेते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण भूमि और वन दोनों की स्थिति चिन्तनीय हो गई है। लोगों को सामूहिक रूप से आगे आकर समाज में इस प्रवृत्ति पर रोक लगानी चाहिए।

4. आगजनी की समस्या : वनों को सर्वाधिक क्षति जंगली आग के कारण होती है। हर वर्ष आग के कारण करोड़ों रुपये की अपूरणीय क्षति होती है। सीमित संसाधन होने के कारण वन विभाग आग की घटनाओं पर काबू पाने में नाकामयाब रहा है। जो लोग जंगल के आसपास रहते हैं वे आग को भीषण रूप धारण करने से पहले बुझाने या उसे फैलने से रोकने में मदद कर सकते हैं।

उपरोक्त समस्याओं से निजात पाने के लिए सरकार को एक तरफ जहां सख्त कदम उठाने की आवश्यकता है वहीं दूसरी ओर लोगों को जागरूक व प्रोत्साहित करना भी जरूरी है।

सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के विस्तार व पर्यावरण संरक्षण हेतु कुछ महत्वपूर्ण सुझाव इस प्रकार हैं :

- प्रबंध तकनीकों में प्रशिक्षण तथा किसानों को बीज और पौधे उपलब्ध कराना।
- आग और पशु चारण से वनों को होने वाले नुकसान के बारे में लोगों को जानकारी देना।
- वन महोत्सव और वृक्षारोपण दिवस जैसे विस्तार कार्यक्रमों

(शेष पृष्ठ 42 पर)

ग्रामीण उपभोक्ताओं के लिए भी सुलभ है सस्ता न्याय

✍ डा. कमलेश रानी

कृषि प्रधान देश भारत में अधिकांश ग्रामीणों की आजीविका कृषि पर ही आधारित है। कृषि के लिए बिजली, पानी, उर्वरक, बीज इत्यादि तथा भरण-पोषण के लिए उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद में ग्रामीण कृषकों को भी अनेक बार शोषण का शिकार होना पड़ता है जिसके लिए ग्रामीण उपभोक्ता अब तक न्याय से वंचित रहते थे, किंतु अब ग्रामीण उपभोक्ताओं के लिए भी सस्ता, सरल और शीघ्र न्याय सुलभ है। शुल्क अथवा मूल्य देने के बाद भी बिजली और पानी की समुचित आपूर्ति न होने, वस्तु की घटिया किस्म, कम माप-तोल, मूल्य में हेरा-फेरी या किसी सेवा में कमी होने पर ग्रामीण उपभोक्ता विवाद निवारण फोरम अथवा आयोग में शिकायत दर्ज करा कर क्षतिपूर्ति करा सकते हैं। अनेक उपभोक्ता अदालतों में किसानों को बिजली, पानी तथा अच्छी खाद और बीज आदि न मिलने की शिकायतों पर न्याय मिला है।

बाजार में उपभोक्ताओं के शोषण की कहानी बहुत पुरानी है। वस्तुओं और सेवाओं के क्रय-विक्रय से होने वाले शोषण को रोकने के लिए समय-समय पर अनेक कानून बनाये गये हैं। इनमें उपभोक्ता संरक्षण कानून सबसे अधिक प्रभावी है। कानून में अन्य कानूनों की तरह केवल दंडात्मक तथा निरोधक व्यवस्थायें ही नहीं हैं, बल्कि इसके उपबंधों में क्षतिपूर्ति का प्रावधान है। इस कानून में उपभोक्ताओं की शिकायतों को शीघ्र, सरल और कम खर्च पर दूर करने की व्यवस्था है। इस प्रयोजन के लिए कानून के अंतर्गत राष्ट्रीय, राज्य तथा जिला स्तर पर अर्द्ध-न्यायिक तंत्र के रूप में आयोग और फोरम स्थापित किये गये हैं।

उपभोक्ता संरक्षण कानून के अंतर्गत उपभोक्ताओं को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं:

1. ऐसे माल के विपणन के विरुद्ध संरक्षण पाने का अधिकार जो जीवन और सम्पत्ति के लिए खतरनाक हो।
2. अनुचित व्यापार व्यवहारों से उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने के लिए माल की गुणवत्ता, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक और मूल्य के बारे में सूचित किये जाने का अधिकार।
3. जहां भी संभव हो वहां प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर माल की विभिन्न किस्में सुलभ कराने का अधिकार।
4. सुनवाई तथा इस आश्वासन का अधिकार कि उपभोक्ताओं के हित पर समुचित मंचों पर सम्यक रूप से विचार किया जायेगा।
5. अनुचित व्यापार व्यवहार या शोषण के विरुद्ध क्षतिपूर्ति का अधिकार।
6. उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार।

उपभोक्ता संरक्षण कानून निजी, सार्वजनिक और सहकारी सभी क्षेत्रों पर लागू होता है। इस कानून के अंतर्गत उस व्यक्ति को उपभोक्ता माना जाता है जो वस्तु या सेवा के लिए कीमत का भुगतान करता है या उसके भुगतान का वचन देता है अथवा उसका आंशिक भुगतान करता है या आंशिक भुगतान का वचन देता है। क्रेता से भिन्न ऐसा व्यक्ति भी उपभोक्ता की श्रेणी में आता है जो क्रेता के अनुमोदन पर वस्तु/सेवा का उपयोग करता है। कोई भी व्यक्ति उपभोक्ता कानून के अंतर्गत पंजीकृत, स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठन, पंजीकृत संस्था, केंद्र सरकार, राज्य सरकार अथवा केंद्र शासित प्रदेश की सरकार से शिकायत कर सकता है। शिकायत व्यापारी द्वारा अनुचित व्यापार व्यवहार के कारण हुई हानि, खरीदे गये माल में त्रुटि, व्यापारी द्वारा अधिक मूल्य लेने या सेवाओं में किसी प्रकार की कमी होने के लिए की जा सकती है।

उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग/फोरम में शिकायत दायर करने के लिए कोई कोर्ट फीस नहीं लगती है। शिकायतकर्ता अथवा उसका कोई प्राधिकृत अभिकर्ता व्यक्तिगत रूप से अथवा डाक से आयोग/फोरम को शिकायत भेज सकता है। समान शिकायत होने पर एक से अधिक उपभोक्ता सामूहिक रूप से शिकायत दर्ज करा सकते हैं। एक ही शिकायत में एक से अधिक प्रतिवादी भी बनाये जा सकते हैं।

यदि परिवादी ने समान शिकायत दीवानी अदालत या एकाधिकार प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार आयोग (एम. आर. टी.

पी. सी.) में की हुई है तो उसे उपभोक्ता अदालत में शिकायत दर्ज नहीं करानी चाहिए। ऐसी शिकायत उपभोक्ता अदालत द्वारा रद्द कर दी जाती है। शिकायत उसी उपभोक्ता अदालत में करनी चाहिए जहां उसका अधिकार क्षेत्र बनता हो।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत वस्तु और सेवा की कीमत हर्जे सहित पांच लाख रुपये तक होने पर शिकायत जिला फोरम में की जा सकती है। पांच लाख रुपये से अधिक और 20 लाख रुपये से कम के मामले राज्य आयोग के अधिकार क्षेत्र में आते हैं। बीस लाख रुपये से अधिक की शिकायत के लिए राष्ट्रीय आयोग में जा सकते हैं। फोरम के निर्णय से संतुष्ट न होने पर राज्य आयोग में और राज्य आयोग के निर्णय से संतुष्ट न होने पर राष्ट्रीय आयोग में दोनों पक्ष अपील कर सकते हैं। अपील निर्णय से 30 दिन के अंदर की जानी चाहिए। अपील करने पर भी कोई शुल्क नहीं लिया जाता है।

शिकायत का प्रारूप

उपभोक्ता अदालतों में शिकायत दायर करने तथा उन पर न्याय प्राप्त करने की प्रक्रिया सरल और शीघ्रगामी है। उपभोक्ता शिकायत को किसी भी साधारण कागज पर अध्यक्ष, फोरम/आयोग को संबोधित करते हुए, दायर कर सकते हैं।

शिकायतकर्ता को वकील करने की आवश्यकता नहीं है। शिकायतकर्ता अपना मुकदमा खुद लड़ सकता है। शिकायतकर्ता और विरोधी पक्षकारों को सुनवाई के दिन फोरम/आयोग के समक्ष उपस्थित होना पड़ता है। सुनवाई से पूर्व विरोधी पक्षकार अपना लिखित उत्तर 30 दिन के अंदर दाखिल कर सकते हैं। जिन शिकायतों में अधिक विश्लेषण और परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती है, उन्हें अधिनियम के अनुसार विरोधी पक्षकार को नोटिस प्राप्त होने की तिथि से तीन माह की अवधि में दूर करने का प्रावधान है। जिन शिकायतों में अधिक विश्लेषण और परीक्षण की आवश्यकता पड़ती है उनमें यह अवधि पांच माह हो सकती है।

अधिकांश जिला फोरम जिला और सत्र न्यायालय परिसर में लगते हैं। जिला न्यायाधीश ज्यादातर फोरम के पदेन अध्यक्ष होते हैं। राज्य आयोग राज्यों की राजधानियों में स्थापित हैं।

ध्यान देने योग्य बातें :

1. शिकायत मात्र विपक्षी को परेशान करने के लिए नहीं की जानी चाहिए। गलत शिकायत पर उपभोक्ता भी दंडित किया जा सकता है।
2. शिकायत फोरम/आयोग के न्याय क्षेत्र से संबंधित होनी चाहिए।
3. शिकायत के संबंध में समुचित साक्ष्य जैसे रसीद आदि संलग्न करनी चाहिए।
4. शिकायत सही शिकायतकर्ता या प्राधिकारी अभिकर्ता द्वारा ही की जानी चाहिए।
5. विधिवत लिखी हुई शिकायत मय संलग्नकों के विपक्षीगणों की संख्या से अधिक प्रतियों में प्रस्तुत करनी चाहिए।
6. शिकायतकर्ता द्वारा फोरम/आयोग को किसी प्रकार का निर्देश नहीं देना चाहिए।
7. क्षतिपूर्ति के लिए अनुचित मांग नहीं करनी चाहिए।
8. वैधानिकता को ध्यान में रखते हुए साक्ष्य उपलब्ध कराने चाहिए।
9. शिकायत की ठीक प्रकार पैरवी करनी चाहिए, उचित पैरवी न करने या सुनवाई के समय अनुपस्थित रहने से शिकायत खारिज हो जाती है।
10. संतुष्ट न होने पर ऊपरी आयोग में अपील 30 दिन के अंदर कर देनी चाहिए।
11. शिकायत दर्ज करने के लिए स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठनों से सहयोग लिया जा सकता हैं।

वर्तमान में देश में राष्ट्रीय आयोग के अतिरिक्त 31 राज्य आयोग तथा 455 जिला फोरम उपभोक्ताओं को न्याय सुलभ कराने में संलग्न हैं। न्याय की सस्ती प्रक्रिया होने के कारण उपभोक्ता अदालतों में शिकायतों की संख्या बहुत अधिक है जिस कारण शिकायतों का निवारण करने में अधिक समय लग रहा है। इसीलिए अनेक स्थानों पर फोरमों की संख्या बढ़ाने की प्रक्रिया चल रही है। अंशकालिक फोरमों को पूर्णकालिक करने के प्रयास भी चल रहे हैं।

उपभोक्ता अदालतों से न्याय के लिए वातावरण निर्मित हुआ है। व्यावसायिक अनियमितताओं और अनुचित व्यवहार पर कुछ अंकुश लगा है। वस्तुओं और सेवाओं का व्यवसाय करने वाले निजी, सहकारी और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में उपभोक्ता अदालतों का प्रभाव दिखायी देने लगा है। अभी उपभोक्ता अदालतों के

क्षेत्र को व्यापक और अधिक प्रभावी करने की आवश्यकता है। इसके लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम में संशोधन अपेक्षित है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभी उपभोक्ता संरक्षण आंदोलन की पहुंच न के बराबर है, जबकि भारत की तीन-चौथाई जनसंख्या गांवों में बसती है। अतः स्वैच्छिक उपभोक्ता संगठनों, सहकारी संस्थाओं और सरकार को ग्रामीण उपभोक्ताओं को जागरूक बनाने के व्यापक प्रयत्न करने चाहिए।

अध्यक्ष,
महिला उपभोक्ता परिषद,
"हिमदीप" राधापुरी,
हापुड़ - 245101 (उ. प्र.)

(पृष्ठ 30 का शेष)

बच्चे और शोर...

लेते हैं। इसलिए विद्यालय के चारों तरफ कम से कम दो-चार पंक्तियों में पौधे अवश्य लगाने चाहिए। विद्यालय के भवन के भीतरी भाग को हरे रंग से रंग देने से भी ध्वनि अवशोषित हो जाती है और अनावश्यक कोलाहल से बचा जा सकता है। घरों के इर्द-गिर्द भी पेड़ लगाकर और घर की दीवारों को नीले या हरे रंग में रंगकर ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

शांत वातावरण में जो राहत महसूस होती है, उसका स्पष्ट लाभ हमारे तनाव, चिंता और परेशानियों पर पड़ता दिखायी देता है। यह एक प्रमाणित तथ्य है कि शांत वातावरण में आदमी सक्रिय रहता है और उसकी कार्यक्षमता बढ़ जाती है। मौन रहने से भी शोर से उपजी अशांति शांत हो जाती है। बच्चों में भी अनावश्यक बोलने की आदत पर रोक लगानी चाहिए और उन्हें शोर से बचाकर रखना चाहिए।

सी/204, लोअर हिनू,
रांची-834002

(पृष्ठ 32 का शेष)

सावधान! मानव जाति...

(4) वैसे ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाई आक्साइड ही प्रमुख गैस है परन्तु समताप मंडल के ओज़ोन स्तर में क्षय का प्रमुख कारण क्लोरोफ्लोरो गैसें हैं।

(5) क्लोरोफ्लोरोकार्बन नामक ये गैसें मानव निर्मित यौगिक ही है जो कि वायुमण्डल में बिना परिवर्तित हुए अनेक वर्षों तक रह सकती हैं। यदि इन यौगिकों के उत्सर्जन पर रोक लगाने में हम सफल हो भी जाते हैं तो भी उनका जलवायु पर दुष्प्रभाव आने वाले कई दशकों तक बना रहेगा।

(6) ओज़ोन परत के क्षय की वजह से सन् 2050 तक पराबैंगनी विकिरण की मात्रा में 20-50 प्रतिशत की वृद्धि का खतरा है।

उपरोक्त तथ्यों पर ध्यान न देना हर परिस्थिति में समस्त मानव समुदाय के लिए घातक सिद्ध होगा। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व मौसम संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम से सम्बन्धित सभी पर्यावरण/प्रकृति वैज्ञानिकों को समर्पित होकर तथा एकजुट होकर कार्य करना होगा। धरती के निवासियों को भविष्य में प्रलयकारी परिस्थिति पैदा होने की आशंका को टालने के लिए निरंतर संघर्ष करना होगा। आखिरकार प्रकृति के संभावित प्रकोप के दुष्प्रभावों को तो पूरे मानव समाज को ही भुगतना पड़ेगा। अतः प्राकृतिक प्रदूषण के लिए एक दूसरे को जिम्मेदार ठहराने से तो अच्छा है कि धरती के निवासी सभी मनुष्य मिलजुल कर पर्यावरण की सुरक्षा के लिए काम करें तथा मानव के अस्तित्व पर मंडराते हुए संकट के बादल को हटाने के लिए सामूहिक प्रयास करें। विश्व के प्रमुख राष्ट्राध्यक्षों ने भी यही बात सामूहिक रूप से "पृथ्वी सम्मेलन" रियो, ब्राजील में कही थी। "सावधान! मानव जाति संकट में है, इसे सामूहिक रूप से बचाने के लिए संघर्ष करना ही होगा। यह उत्तरदायित्व पूरे मानव समाज का ही है जिसे अनिवार्य रूप से पूरा करना है।"

बी-228, सादतपुर, करावल नगर रोड़,
दिल्ली-110094

पारिस्थितिक विकास की आवश्यकता

रमेश चन्द्र पारीक

मानव स्वार्थ व तृष्णा अंतहीन है। गांधी जी ने कहा था कि प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता के लिए हमारी दुनिया में पर्याप्त संसाधन हैं परन्तु उसके लालच के लिए नहीं हैं।

प्रकृति हमारे जीवन को विविध स्वरूपों व आयामों से प्रभावित करती है। हम पूर्णरूपेण प्रकृति पर निर्भर हैं फिर भी ताज्जुब व हैरानी की बात यह है कि हम उसके साथ अच्छा सलूक नहीं कर रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने अमर ग्रंथ "रामचरित मानस" में स्पष्ट कहा है—"पर हित सरिस धर्म नहीं भाई" किन्तु आज की पीढ़ी के लोग तो ठीक इसके विपरीत आचरण कर रहे हैं। यदि ऐसी ही स्थिति चलती रही तो आगे के कुछ ही वर्षों में यानी 21वीं सदी के स्वागत समारोह में ही प्रकृति भयावह व विकृत रूप धारण कर लेगी। उस समय हमारा जीना, हंसना, खाना, पीना सब कुछ नीरस व दूभर हो जायेगा। इसीलिए अब भी हमें सावधान हो जाना चाहिए, सतर्क हो जाना चाहिए। पर्यावरण के प्रति सचेत होने व प्रदूषण को नियंत्रित करने में ही सबकी भलाई निहित है। हमें अपनी प्रतिभा, समझ, क्षमता के मुताबिक पर्यावरण सुधार के लिए जी तोड़ प्रयास प्रारंभ कर देने चाहिए।

एक ओर जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति बनी हुई है क्योंकि आज देश की जनसंख्या 91 करोड़ को पार कर चुकी है तथा दूसरी ओर हम प्राकृतिक संसाधनों का अपने स्वार्थ में डूबकर गलत तरीके से दोहन कर रहे हैं। नदियों के साफ जल को गंदा कर रहे हैं। शुद्ध व ताजी हवा को प्रतिपल विविध तरीकों से अशुद्ध बना रहे हैं। प्राण वायु आक्सीजन को कार्बन डाई आक्साइड में बदल रहे हैं। धरती के कृषि योग्य क्षेत्र को निरन्तर घटा रहे हैं। उपजाऊ भूमि व घने जंगलों को साफ करके भव्य इमारतें बना रहे हैं। वाहनों से अनियंत्रित प्रदूषण फैला रहे हैं। हमें इस स्थिति से बचने के लिए उचित उपाय सोचने होंगे। पर्यावरण संबंधी विभिन्न समस्याओं के मिलकर समाधान ढूंढने के प्रयास करने होंगे। आज दिखावे व ढोंग से बचकर अपने ध्येय व दायित्व को निष्ठा व आस्था के साथ सच्चे मन से, ईमानदारी से क्रियान्वित करने की जरूरत है। पर्यावरण संरक्षण को एक अहम दायित्व समझकर दृढ़ निश्चय लेने व विश्वसनीयता को पुनः स्थापित करने की प्रबल आवश्यकता है वरना भावी पीढ़ियां हमें कतई माफ नहीं करेंगी।

जीवों व प्रकृति के बीच आपसी संबंधों के ताने बाने के अध्ययन को पारिस्थितिकी (इकोलाजी) कहते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र मुख्य दो प्रकार का होता है—पहला जलीय तंत्र जिसमें झील, नदी, तालाब, निर्झर, सागर, समुद्र आदि आते हैं तथा दूसरा स्थलीय इसमें मैदान, वन, पहाड़, गुफाएं, मरुस्थल, पठार इत्यादि आते हैं। मनुष्य के द्वारा निर्मित पारिस्थितिक तंत्र भी होते हैं जैसे तालाब, नहर, बांध, पार्क, गांव, शहर, खेत इत्यादि। पदार्थों तथा ऊर्जा की आवश्यकता से अधिक अवांछित उपस्थिति ही पर्यावरणीय प्रदूषण को इंगित करती है। प्रदूषण भी विभिन्न प्रकार के होते हैं जिनमें वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण मुख्य हैं।

मानव और प्रकृति के बिगड़ते स्वरूप, संतुलन व ताने-बाने को परिष्कृत करने के लिए पारिस्थितिक विकास की खास आवश्यकता महसूस हो रही है। हमें रूख भायला यानी पेड़ मित्र बनने की अदद जरूरत है क्योंकि ऐसी भयावह स्थिति में वृक्ष ही हमारी सबसे ज्यादा मदद कर सकते हैं। हम सब मिलकर सघन वृक्षारोपण करके, उद्योगों के जहरीले धुएं व मलवे को नियंत्रित करके, वनों की कटाई रोक करके पर्यावरण को बचा सकते हैं। यह हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी व नैतिक दायित्व भी है जिसे हम नजरअंदाज करके कभी बाद में पछतायेंगे।

हमें यह सोचना होगा कि हम प्रकृति से कितना ग्रहण करें, किस मात्रा व अनुपात में लें यानी जो हमारे गुजारे के लिए आवश्यक हो। इसलिए हमें प्रकृति के अनुपम उपहारों का सही तरीके से इस्तेमाल करना चाहिए।

पर्यावरण की दृष्टि से विकृत क्षेत्र के पुनरुद्धार करने, बढ़ते प्रदूषण की रोकथाम करने, पर्यावरण विकास, संरक्षण व जनचेतना जागृत करने के लिए पर्यावरण व पारिस्थितिक विकास शिविर आयोजित करने की सख्त जरूरत है। इस आंदोलन में विद्यालयों की भूमिका व सहयोग अधिक आनंद की अनुभूति दे सकता है। इस जन आंदोलन में बच्चों, युवाओं, प्रौढ़ों व बुजुर्गों

सभी की अपनी रुचि, समझ, क्षमता, व सामर्थ्य के अनुसार सहयोग अपेक्षित है। पारिस्थितिक विकास शिविर के आयोजन की व्यावहारिक गतिविधियां विद्यालय में अच्छी तरह से क्रियान्वित हो सकती हैं। स्कूल के छात्रों को इस कार्यक्रम से जोड़कर हम पर्यावरण सुधार की दिशा में क्रियात्मक पहल की शुरुआत कर सकते हैं। पारिस्थितिक विकास शिविर के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हो सकते हैं–(1) गांव, शहर, स्थान, क्षेत्र को प्रदूषण मुक्त, हरा-भरा व शुद्ध बनाना (2) छात्र-छात्राओं, समाज व जनसाधारण को पर्यावरण संबंधी जानकारी देना (3) युवा शक्ति को पर्यावरण सुधार की ओर उन्मुख व अग्रेसित करना (4) पर्यावरण संरक्षण के महत्व एवं प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रयोग की भावना जगाना (5) समाज के लोगों का रहन-सहन, खान-पान, क्रियाकलाप आदि प्रकृति के अनुकूल बनाने का भाव जागृत करना (6) युवा पीढ़ी एवं जन साधारण में राष्ट्रीय एवं भावनात्मक एकता की भावना को उत्पन्न करना इत्यादि।

वर्तमान में मानव ने अपने अथाह स्वार्थ के गर्त में डूबकर, भौतिक सुख-सुविधाओं के लालच में सिमटकर, सुविधाभोगी संस्कृति में अंधे होकर प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का मनमाने तरीके से व अनुचित शैली में दोहन करके पृथ्वी पर पर्यावरणीय असंतुलन को बढ़ाया है। उसने जल, वायु, भूमि को प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। बढ़ती जनसंख्या, अशिक्षा, होड़ प्रवृत्ति, मन की तृष्णा, भविष्य के प्रति लापरवाही का भाव, प्रकृति प्रेम व जन जागृति की न्यूनता इसमें सहायक बनी है। इस अविरल प्रदूषित होते पर्यावरणीय वातावरण को रोकने, पारिस्थितिक के प्रति जन चेतना जागृत करने, विखंडित क्षेत्र का भौतिक सुधार करने, लोगों में मानसिक जागरूकता उत्पन्न करने, जीव जन्तुओं व प्रकृति के बीच मधुर संबंध स्थापित करने, पारिस्थितिक विकास शिविर आयोजित करने, चर्चाएं, गोष्ठियां, सेमिनार व रचनात्मक पहलू उजागर करने की सख्त जरूरत है। मन की तृष्णा पर काबू रखने, वृक्षारोपण करने, उन्हें संरक्षण देने, खनन कार्य को मर्यादित करने, धुएं व मलबे को नियंत्रित करने, प्राकृतिक संसाधनों का सदुपयोग करने, किफायत बरतने, वृक्ष मित्र बनने और छात्रों, युवाओं व जनसामान्य को इस आंदोलन से जोड़ने की आवश्यकता है। हमें पारिस्थितिक विकास को सार्थक और जनोपयोगी बनाने के दृढ़ संकल्प को सांसों में बसाने की परम आवश्यकता है। एक अच्छे नागरिक, स्वस्थ देशवासी व आदर्श प्रकृति प्रेमी के रूप में जीने की उत्कंठा होनी आवश्यक है।

बी-3, स्टाफ क्वार्टर्स,
केन्द्रीय विद्यालय परिसर
मोती डूंगरी के नजदीक,
अलवर (राजस्थान) - 301001

(पृष्ठ 37 का शेष) **सामाजिक वानिकी...**

में लोगों विशेषकर, किसानों, युवकों और बच्चों को शामिल कर उन्हें प्रेरित करना और जागरूक बनाना।

- ग्रामीणों को इस बात की जानकारी देना कि वे बार-बार काम में आने वाले, नष्ट न होने वाले और गैर व्यावसायिक पौधों की प्रजातियों व झाड़ियों को ही ईंधन के रूप में इस्तेमाल करें।
- किसानों को कृषि के मुकाबले बागवानी के लिए अधिक भूमि इस्तेमाल में लाने हेतु प्रेरित करना।

निष्कर्षतः सामाजिक वानिकी कार्यक्रम की सफलता के लिए वनरक्षकों, ग्रामीणों, राजनीतिज्ञों, समाजसेवियों और नीति निर्माताओं तथा उन सभी लोगों को जो प्राकृतिक संसाधनों के सृजन, रखरखाव और उपयोग से संबद्ध हैं, अपनी भूमिका में परिवर्तन लाना होगा। ग्रामीण लोगों को शिक्षित करने, प्रशिक्षण देने और प्रेरित करने के साथ-साथ अनुसंधान और प्रशासन के बारे में कुछ संस्थागत परिवर्तन भी करने होंगे। प्राचीन काल से हमारे देश में पर्वतों, नदियों, वृक्षों, वनों एवं वन्य जीवों को जिस भावना से वंदनीय माना जाता है, यह पर्यावरण संरक्षण एवं मानव कल्याण की भावना ही है। आज पर्यावरण और मानव अस्तित्व जिस संकट से गुजर रहा है, उसे हमारे सांस्कृतिक आदर्श पर्यावरण के हित में "डूबते को तिनके का सहारा" सिद्ध हो सकता है। "वाराह पुराण" में वृक्षारोपण की विधि से संबंधित वन महोत्सव एवं वृक्षारोपण समारोह का वर्णन मिलता है :

"अश्वस्थमेकं पिचुमिन्दमेकं न्याग्रोधमेकं दशपुष्पजातीः।
द्वेद्वे तथा दाडिममातुलुंगे पंचाम्ररोपी नरकं न याति।।"
(वाराह पुराण - 172/39)

अर्थात् जो व्यक्ति एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस फूलों के पौधे या लताएं, दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह नरक में नहीं जाता है। अतः यह आवश्यक है कि हम लोग स्वयं उन सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति उत्सुक एवं उदार होकर वृक्षारोपण एवं वन संरक्षण में योगदान करें ताकि हमारी भावी पीढ़ी हमारी पर्यावरण संबंधी भावना से प्रेरित होकर प्रदूषण मुक्त वातावरण की प्राप्ति के लिए जागरूक हो सके।

ग्राम पो : जैतपुर,
थाना : बड़हिया,
जिला : लखीसराय (बिहार)

उभरती संवेदनहीनता - हास्य एक समाधान

राजेश कुमार

हम अपने आसपास देखते-सुनते और पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते रहते हैं कि भौतिकवाद बढ़ रहा है, जिन्दगी तेज रफ्तार से दौड़ी जा रही है, मूल्य बदल रहे हैं और परिणामतः संवेदनहीनता की स्थिति पैदा हो रही है। लेकिन हम आमतौर पर पढ़कर या सुनकर ही रह जाते हैं। ये शब्द उस वक्त खाली और खोखले हो जाते हैं जब हम इनको सुनकर भी तुरंत किसी अन्य विषय पर बात करने लगते हैं। कभी हमने यह नहीं सोचा कि भाहनारहित संवेदना, तेज रफ्तारी जिन्दगी ये सब क्या हैं? बहुत सीधी-सी बात है जब इन शब्दों को हम खुद मात्र शब्द मानकर इन पर ध्यान नहीं देते हैं तो फिर यह हमारी कौन-सी स्थिति है? शायद संवेदनहीनता की। शायद खुद को सर्वश्रेष्ठ समझने की प्रवृत्ति कि हमें क्या? हम क्यों सोचें? हम तो ऐसे नहीं है। असंख्य ऐसे सवाल बन सकते हैं। शहरों के ही नहीं, गांव के लोग भी इस बीमारी की चपेट में आ चुके हैं। पर प्रतिशत बहुत कम है। अगर यही हाल रहा तो गांवों पर भी शहरों का रंग चढ़ जायेगा।

सभी इसी दौड़ में शामिल हैं कोई कम तो कोई ज्यादा। बड़ी-बड़ी बातें करेंगे समाज की, देश की, परिस्थितियों की, महंगाई की, नारी-मुक्ति की....खोखली हंसी होगी, निरर्थक ठहाके होंगे, महज खानापूर्ति होगी। मुझे याद है एक बार जब गुरुदेव ने मुझे मनुष्य और इंसान में अंतर समझाया था, उनका कहना कितना सही था कि कहीं भी इंसान नज़र नहीं आता। दीखता है तो सिर्फ मनुष्य, आदमी। और अगर कहीं इंसान है भी तो जैसे भूसे के ढेर में सूई ढूंढने के बराबर। सब कहीं भूसे के ढेर के समान मनुष्य हैं, इंसान तो सुई है, फिर कैसे मिलेगा।

अभी पिछले दिनों मैं कहीं गया था, वहां एक स्थान पर सड़क पर खड़े होकर पांच मिनट इत्मिनान से मैंने वहां आने-जाने वाले लोगों को देखा। चारों ओर सिर्फ पुतले थे, जिनके सिर काले थे, बदन पर लटके वस्त्र उन्हीं की रिक्तता को और बढ़ा रहे थे। आंखों के नाम पर शून्य-शून्य से दो जीव। जो इधर से उधर भटक रहे थे, निरुद्देश्य। उनके देखने का कोई अर्थ नहीं था। आंखे हैं इसलिए देखना पड़ता है, वरना नहीं तो अच्छा था। और अगर भूले-भटके नज़र मिल भी जाये, तो उन आंखों में वहीं अजनबीपन चलते जा रहे हैं या फिर चलाते जा रहे हैं अपनी मशीन को। और उस स्थिति में मुझे यह भान हुआ कि मैं भी उनके जैसा ही हूं। सिर है, आंखे हैं, या फिर....और यह सोचकर मैं झटके से मुड़ा और उसी भीड़ में एक चेहरा मेरा भी था, पर क्या यह सही था? आप कहोगे फिर क्या किया जाए? ऐसी भागमभाग भीड़ और इस युग में क्या किया जाए? कोई संवेदनशील इंसान अगर सोचे तो भी हल नजर नहीं आता।

इस मौजूदा हालात के लिए हम सब जिम्मेदार हैं। वर्तमान कारण, परिस्थितियां हालात सब हमारे पैदा किये हुए हैं। हमारे किये कारण भावी से भावी पीढ़ी भुगतती आ रही है, सब इनको सुधारने की बात कहते हैं, बड़े-बड़े लेख लिखते हैं, अखबार में संपादकीय लिखा जाता है, पर किया कुछ नहीं जाता। बात ढाक के तीन पात। हम उनको पढ़ते हैं, सिर्फ पढ़ने के लिए, थोड़ी देर सिर झटक कर जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं, यह नहीं कि, अगर हम दूसरों को सुधारने और सम्भालने की बात कर सकते हैं, तो शुरुआत स्वयं से ही क्यों न की जाए। और जब हम इन सवालों के जवाब पा लेंगे तो हमारे संपर्क में दो-चार या जितने भी लोग आयेंगे तो सशक्त व मजबूत आधार होते हुए हम तो सुधार ही सकते हैं और सुधारना क्या, सिर्फ संकेत होता है, बाकी तो सभी जानते हैं, पर ऐसी पहल खुद से कोई नहीं करता—प्रत्येक परिवर्तन चाहता है समाज का, देश का, पर स्वयं का नहीं, पर क्या यह उचित है? मानव से पत्थर होती प्रवृत्ति को रोकने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि हमारे विचार, भावनाएं, चिन्तन अगर सही काम कर रहे हैं तो हम जब तक हो सके ऐसी स्थितियां पैदा होने से रोकें। हम खुद कभी ऐसा काम नहीं करें जो गलत हो या वास्तव में जिससे दूसरे के दिल को ठेस पहुंचती हो। जब भी किसी को वास्तविक सहायता की जरूरत हो अवश्य करें। कोई क्या कहेगा इस बात की तनिक भी चिन्ता न करें। अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों से मृदुल व स्नेही व्यवहार बनाये रखें। हमारा पहला अध्याय इसी मृदुल मुस्कान से शुरू होता है। यानि "मधुर मीठी हंसी.... !"

आज इस आपाधापी के युग में जब लोग भाग रहे हैं पैसे के पीछे, कार, बंगले के पीछे तो उन्हें चैन कहां है, सुख के साधन सभी हैं, लेक्रिन चैन नहीं है। जब चैन ही नहीं होगा तो हंसना

तो दूर वे तो यह भी भूल चुके हैं, कि मुस्कराहट क्या होती है। बेमानी, स्वार्थी, खोखली हंसी तो हर कोई हंस लेता है, लेकिन जब बात निश्चल मुक्त हास्य की होती है तो लोगों की नजरें स्वभाववश आश्चर्यमिश्रित होती हैं।

एक ठहाकेदार परिपूर्ण हंसी रोगी आदमी को भी निरोगी बना देती है और एक सौम्य मुस्कान में जो जादू होता है उसकी तो बात ही कुछ और है। तनावमुक्त और परेशानी की हालत में आप ऐसी कोई बात करिये जिसे याद आते ही आपका मन खिल उठे और आप बरबस मुस्करा दें तो कोई वजह नहीं होगी कि आपकी परेशानी कम न हो जाए और शान्त चित्त से आप अपनी समस्या का समाधान भली-भांति कर सकते हैं।

हंसना अपने स्वभाव में शामिल कर लीजिए पर बात-बेबात पर हंसना आपको अशोभनीय व अभद्र का करार दिला सकती है। लेकिन जहां बात हंसी की हो वहां चूकिये मत दिल खोलकर हंसिये, हंसने में कंजूसी नहीं।

हंसमुख स्वभाव का व्यक्ति सबको पसन्द आता है। इसके अतिरिक्त यदि आप मुंह फुलाये रहते हैं, तो सब आपसे बचना पसन्द करेंगे। न आप दूसरों को सन्तुष्ट कर सकेंगे, न स्वयं को। और होते-होते वही संवेदनहीनता की स्थिति आ पहुंचती है। इसलिए इससे बचें। किसी से थोड़ी देर मिलने पर उसको अपना दुखड़ा सुनाने की अपेक्षा अदब से मुस्करा कर उनका स्वागत करेंगे तो जो प्रभाव पहले पड़ता, वह तो हरगिज नहीं पड़ेगा। वरन् वह मनुष्य भी आपका साथ ही देगा और अगर सभी इसी तरीके से व्यवहार करें तो कोई कारण नहीं कि कोई उदास, परेशान हो।

आपसे कोई परिचित मिलने जब आते हैं, तो अन्य सब बातों को परे धकेलते हुए मुस्कराकर उनका स्वागत करें। आपकी मुस्कान ही उनके मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाएगी। अपने चेहरे की भाव-भंगिमाओं को अनावश्यक रूप से तोड़िये, मरोड़िये नहीं। अगर आप हमेशा दूसरों से खुलकर मिलते हैं तो दूसरों की भी वही प्रतिक्रिया होगी और आपकी यह आदत आपके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होगी। अनावश्यक रूप से कभी अपने विरोधी का विरोध मत करिए अपितु बात हंसकर टालना उचित है। लेकिन जब कोई अनाधिकार चेष्टा करे तभी विरोध जरूरी है। वरना आप बात को अपने स्वभाव के अनुकूल प्रसन्न माहौल में भी हल कर सकते हैं।

अगर आप में हंसमुख रहने की आदत नहीं है, तो यह काम ज्यादा कठिन नहीं है, अपितु अभ्यास द्वारा, कर सकते हैं। सचमुच अभ्यास द्वारा हमारे स्वभाव में परिवर्तन हो सकता है और बखूबी आप हसंमुख व्यक्तित्व के मालिक होंगे। आप अकेले रहते हैं, तो भी स्वयं को खुश रखिये। प्रसन्न रहने के लिए लोगों का साथ रहना जरूरी नहीं होता। अपने आसपास अपनी पसन्द का माहौल बनाए रखिए। अपनी रुचियों को विकसित करने का प्रयत्न करिए। चाहे कितने ही व्यस्त हों, मन पर बोझ और थकावट का अनुभव न होने दें। अगर ऐसा हो रहा है तो अपने काम की व्यस्तता को समाप्त करके कोई दूसरा मनपसन्द कार्य आरम्भ कर दें। इससे कार्य में मन लगेगा और स्वयं अच्छा महसूस करेंगे। आपका अपना मन स्वयं खुश हो जायेगा। एक सुखी जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है - हंसमुख रहना। किसी भी एक हंसमुख व्यक्ति के जीवन में झांककर देखिये, आप स्वयं उनसे प्रभावित होंगे। चेहरे पर कोमल मुस्कराहट दूसरे को जबरन मुस्कराने को प्रेरित करती है। फिर इस बात का लुत्फ हम क्यों न उठाये? आपकी मुस्कान से खुशी का इजहार होता है। इसलिए अपनी अनमोल मुस्कान, बेशकीमती हंसी दूसरों के साथ मिलकर बांटिये। माहौल ही खुशनुमा हो जाएगा। सारा जगत रूपहला-स्वप्निल लगेगा — कारण सिर्फ आन्तरिक खुशी, मधुर मुस्कान।

याद रखिए - आप हंसेंगे तो जग हंसेगा पर रोना आपको अकेले ही पड़ेगा....कोई आपके साथ नहीं रोयेगा। हरगम, चिन्ता, परेशानी, बोझ को भुलाकर सुख से रहने की चेष्टा करिए। अपने संपर्क में आने वाले हर प्राणी की संवेदना को पहचानिये। सच्ची सहानुभूति, निश्छल भाव से हरेक प्राणी की भावनाओं को समझिये। तभी आज के संवेदनहीन वातावरण से हम निपट सकते हैं। निष्प्राण और शून्य लोगों पर भी आपका प्रभाव पड़ेगा। और अगर आप सच में ऐसा करते हैं तो समझिये आप सिर्फ दूसरों की तरह कह नहीं रहे वरन् सच में आपने करके दिखाया है। आपको स्वयं को सन्तोष मिलेगा। कोई दूसरा आपसे खुश होगा तो आपकी अन्तरात्मा को खुशी मिलेगी। इसलिए हंसो और हंसाओ। आपका आधा गम तो उसी समय दूर हो जायेगा, जब एक कोमल, प्यारी सी मुस्कान आपके अधरों पर खिलेगी। हास्य और संवेदना का चोली-दामन का सम्बन्ध चरितार्थ है। उभरती संवेदनहीनता हास्य से दूर हो सकती है, अन्य साधनों से नहीं।

शोध-छात्र, संस्कृत विभाग,
राजस्थान-विश्वविद्यालय, जयपुर

पंचवर्षीय योजनाएं एवं ग्रामीण विकास रणनीति

अमित कुमार सिंह

देश की प्राचीन एवं अर्वाचीन व्यवस्था को देखने पर अनुभव होता है कि ग्रामीण विकास का दर्शन नवीन नहीं बल्कि पौराणिक है। वेद एवं उपनिषद काल में भी ग्रामीण प्रशासन, अर्थ व्यवस्था एवं विकास के दर्शन चर्चित रहे हैं। मध्ययुगीन काल में भी स्थानीय प्रशासन, विकास एवं राजस्व संग्रह के लिए ग्रामीण प्रशासन को प्रधानता दी गयी थी। अंग्रेजी शासन काल में ऐसे कार्य कलापों का ह्रास हुआ। लेकिन बीसवीं सदी के मध्य में पुनः ग्रामीण विकास की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के दो दशकों में राष्ट्र विकास में देश के प्रमुख नेताओं की भागीदारी को अंग्रेजी शासन ने स्वीकार किया। परिणामतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा 1930 में पं. जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय समिति गठित की गई जिसका उद्देश्य था – "देश के आर्थिक ढांचे का अध्ययन कर राष्ट्र के विकास के लिए योजनाएं तैयार करना।"

सर्वप्रथम श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा ग्रामीण विकास पर एक योजना तैयार कर उसे शांतिनिकेतन में कार्यान्वित किया गया। पुनः राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ग्राम्य विकास कार्यक्रम को ठोस रूप देते हुए ग्राम स्वावलम्बन सिद्धांत कार्यान्वित किया। ग्राम विकास का बुनियादी आधार गांव का सर्वांगीण विकास कर गांव को स्वावलंबी बनाना था। इस प्रकार ग्रामीण विकास के इतिहास की ओर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि ग्रामीण विकास के महत्व पर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विशेष ध्यान दिया गया और कई प्रयोग किए जाते रहे। मार्च 1950 में योजना आयोग का गठन इस उद्देश्य से किया गया कि "राष्ट्र में उपलब्ध साधन स्रोतों का संतुलित उपयोग कर प्रभावी बनाया जा सके और इसका लाभ अधिक से अधिक लोगों को प्राप्त हो सके।" इस आयोग का उद्देश्य यह भी था कि विकास की प्रक्रिया में प्रत्येक नागरिक की भागीदारी हो और आम आदमी का जीवन स्तर ऊंचा उठ सके तथा आर्थिक विकास के बहुआयामी अवसरों का सृजन हो सके। वर्ष 1951-52 से लेकर आठवीं पंचवर्षीय योजना तक गांव की मूलभूत और न्यूनतम आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए कई विकास कार्यक्रम तैयार किये जाते रहे हैं, जिनका मूल उद्देश्य गरीबी उन्मूलन और आर्थिक एवं सामाजिक असमानताओं को कम करना है। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण क्षेत्र में सर्वांगीण विकास के लिए सामुदायिक विकास प्रखंडों की स्थापना की गयी और सभी विकास कार्यक्रमों को एक विशेष प्रशासनिक तंत्र द्वारा कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) में यह ध्यान रखा गया कि नागरिकों की आय में पर्याप्त वृद्धि हो, उनके जीवन स्तर में कम से कम 25 प्रतिशत की वृद्धि हो, बुनियादी और बड़े उद्योगों का विकास हो, रोजगार के अवसरों का विस्तार हो तथा आय और सम्पत्ति की असमानता में कमी की जा सके। सामुदायिक विकास प्रखंडों द्वारा विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के अनुभवों के आधार पर विकास कार्यक्रमों के प्रभावकारी क्रियान्वयन में जन-प्रतिनिधि और ग्रामीण संस्थाओं की प्रत्यक्ष भागीदारी की आवश्यकता महसूस करते हुए पंचायत प्रणाली लागू की गयी। प्रथम दो पंचवर्षीय योजनाओं में कार्यान्वित किए गए विकास कार्यक्रमों की सफलता एवं समस्याओं को ध्यान में रखते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में अनेक ऐसे विकास कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार की गई जो क्षेत्र विशेष की आवश्यकताओं एवं उपलब्ध साधनों पर आधारित हों। जैसे कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम, जनजाति विशेष कार्यक्रम, पर्वतीय क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सूखा क्षेत्र विकास कार्यक्रम और मरु क्षेत्र विकास कार्यक्रम इत्यादि। तृतीय पंचवर्षीय योजना के प्रमुख उद्देश्य थे राष्ट्रीय आय में पांच प्रतिशत की वृद्धि करना, उद्योगों एवं निर्यात को सशक्त बनाना, आर्थिक असमानता को दूर करना और आर्थिक साधनों का अधिकाधिक सरल वितरण करना। वर्ष 1969-1970 से 1973-74 तक की अवधि में चतुर्थ योजना कार्यान्वित की गई। इस योजना में पूर्व की योजनाओं के उद्देश्यों को सम्मिलित किया गया – जिसमें मुख्य रूप से निम्न समस्याओं को प्राथमिकता दी गई। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, क्षेत्रीय असमानता को दूर करना, मूल्य वृद्धि को नियंत्रित करना, आय के स्रोतों को सुनियोजित कर उनका निवेश, अर्द्ध विकसित और पिछड़े क्षेत्रों में करना। अनाज भंडारण को सुदृढ़ करना तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत उपभोक्ता वस्तुओं का उचित वितरण करना और मूल्यों को स्थिर करना, इसके अन्य उद्देश्य थे।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में लघु कृषक विकास कार्यक्रम जैसे सीमांत कृषक विकास कार्यक्रम को कार्यान्वित कर एक खास समूह को लाभ पहुंचाने का प्रयास किया गया। इस अवधि में एक अन्य महत्वाकांक्षी योजना न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम को एक प्रेस्पेक्टिव कार्यक्रम के रूप में कार्यान्वित किया गया। पांचवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में अल्प समय के लिये अंत्योदय कार्यक्रम एवं काम के बदले अनाज कार्यक्रम जैसी योजनाओं की रूपरेखा तैयार कर उन्हें लागू किया गया। हालांकि इसकी सफलता लगभग संतोषप्रद रही, लेकिन राजनीतिक परिवर्तनों के कारण ये अवरुद्ध हो गईं। पांचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य, गरीबी पर सीधा प्रहार करना, आय के पुनर्वितरण के लिए प्रयास करना, कृषि एवं औद्योगिक विकास के बुनियादी संबंधों पर बल देना और दोनों को परस्पर सहयोगी बनाना, भू हदबंदी एवं भूमि वितरण को कारगर बनाते हुए समाज के कमजोर वर्गों लघु सीमांत कृषकों एवं भूमिहीन मजदूरों—के उत्थान के लिये प्रयास करना। कृषि इनपुट के उत्पादन पर बल देना और मुद्रा स्फीति पर रोक लगाना। छठी पंचवर्षीय योजना में कई लक्ष्य आधारित उद्देश्यों को भी शामिल किया गया जैसे – बेरोजगारी एवं अर्द्धबेरोजगारी को दूर करने के लिए सघन उपाय, निर्धन वर्ग के परिवारों को प्रत्यक्ष सहायता एवं अनुदान देकर उनके जीवन में सुधार करना, प्राथमिक शिक्षा, प्राथमिक चिकित्सा और भूमिहीनों के लिए ग्रामीण आवास योजना। उपर्युक्त क्षेत्र में लक्ष्य प्राप्ति के लिए गरीबी उन्मूलन पर विशेष बल दिया गया और पोषण तत्व के उपभोग के आधार पर गरीबी की रेखा को परिभाषित किया गया। 1977-78 में देश के ग्रामीण क्षेत्रों में 48 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 41 प्रतिशत परिवार गरीबी रेखा के नीचे थे। छठीं पंचवर्षीय योजना में गरीबी और बेरोजगारी दूर करने को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए सभी पूर्व विकास कार्यक्रमों को एकीकृत कर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के रूप में कार्यान्वित करने का एकजुट प्रयास किया गया। इस कार्यक्रम में गरीबी और बेरोजगारी पर प्रत्यक्ष प्रहार की रणनीति अपनाई गई। इस योजनावधि में गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के लिये ही प्रत्यक्ष और सीधे लाभ वाले अनेक कार्यक्रमों जैसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्व रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण महिला व बाल विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम एवं ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम को ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर कार्यान्वित किया गया। सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में विकास कार्यक्रमों के तहत कृषि उत्पादन क्षमता में वृद्धि के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी एवं अर्द्धबेरोजगारी की समस्या से निपटने के लिये ठोस कार्यक्रम कार्यान्वित किये गये। जनजाति एवं पिछड़े क्षेत्रों को विकसित करने के लिये कई कार्यक्रम चलाये गये। विकास कार्यक्रमों में महिलाओं की भागीदारी एवं महिलाओं को प्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाने वाले कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी गई। अधिशेष भूमि कार्यक्रम से गरीब परिवारों को लाभान्वित करने के प्रयासों में तेजी लाई गई।

इस योजना में अपनाई गई रणनीति मुख्य रूप से यह थी – कृषि में भूमि और जल संसाधन के प्रयोग से उत्पादकता में अधिकाधिक वृद्धि लाना। समन्वित विकास कार्यक्रमों के तहत ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के लिये साधन स्रोत उपलब्ध कराके गरीबी रेखा से ऊपर उठाना - भूमि सुधार कानून को निर्धनों के लिये लाभकारी बनाने का प्रयास करना और उसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के साथ जोड़ना। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के लिये आय बढ़ाने के कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना तथा ग्रामीण महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम को अपेक्षाकृत अधिकाधिक क्षेत्रों में लागू करना, प्रशिक्षण के आधार पर ग्रामीण युवक-युवतियों के लिए स्वरोजगार योजना का विस्तार करना, वित्तीय संस्थाओं जैसे राष्ट्रीयकृत और सहकारी बैंकों आदि से गरीबों के लिए अधिकाधिक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना, स्थानीय उत्पादन के विपणन की व्यवस्था को सुदृढ़ करना और आम नागरिकों की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रयास करना।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अच्छे परिणाम देखते हुए इसे आठवीं पंचवर्षीय योजना में और भी विस्तार दिया गया है। इस अवधि में ग्रामीणों की भागीदारी को प्रभावशाली बनाने के लिए जवाहर रोजगार योजना 1989-90 में लागू की गई। अब पंचायतों एवं आम नागरिकों को ही योजनाएं कार्यान्वित करने का प्रत्यक्ष भार सौंपा गया है।

द्वारा - श्री ए. पी. एन. सिंह,
पी. एन. सर्जिकल नर्सिंग होम,
हुकूलगंज, चौकाघाट,
वाराणसी (उ. प्र.)

वनों के विकास में वृक्ष सहकारिता की भूमिका

सुशील राय *

संसार के विभिन्न भागों में एक जैसे प्राकृतिक पर्यावरण में भी अलग-अलग मानवीय क्रियाकलाप दिखाई पड़ते हैं। पर्वतीय प्रदेशों में जनसंख्या का अपेक्षाकृत कम घनत्व होता है। वन प्रदेशों में जनसंख्या का कम घनत्व रहने का कारण, वहां चलवासी जातियों का रहना है। वनों में रहने वाली जनजातियां पूर्ण रूप से वनों पर आश्रित रहती हैं। उनके भोजन, निवास आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति वनों से ही होती है। वे भेड़-बकरियां और गाय पाल कर दूध व घी आदि बेचकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। वे मकान बनाने, खेती के औजारों आदि के लिए लकड़ी वनों से प्राप्त करते है। परन्तु बढ़ती जनसंख्या और घटते वन संसाधनों ने इनके जीवन को प्रभावित किया है। वनों की कमी का प्रभाव न केवल इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर पड़ा बल्कि इससे पर्यावरण का संतुलन भी बिगड़ा है। अतः वनों के महत्व को स्वीकार कर सरकार ने 1981-82 में सामाजिक वानिकी योजना प्रारम्भ कर वृक्षारोपण कार्य को शुरू किया। इस योजना के मुख्य उद्देश्य हैं :—

"ग्राम पंचायतों में उपलब्ध सार्वजनिक भूमि पर ग्राम वन निर्मित कर ग्रामवासियों की वनोपज की आवश्यकता जैसे—जलाऊ लकड़ी, इमारती लकड़ी, बांस, चारा आदि की पूर्ति करना। कृषकों को निजी क्षेत्र में वृक्षारोपण के लिए प्रोत्साहन देना, गरीबी की रेखा के नीचे स्तर के निवासियों को प्राथमिकता के आधार पर रोजगार उपलब्ध कराना तथा पशुपालन के अवसर बढ़ाना आदि।"

सामाजिक वानिकी योजना प्रारंभ होने के बाद भी जैविक दबाव के कारण बिगड़े वनों के क्षेत्र में प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। अतः ऐसी किसी योजना की आवश्यकता महसूस की गई जिसकी पृष्ठभूमि में स्थानीय ग्रामीणों के सहयोग से बिगड़े वनों पर वृक्षारोपण किया जाए और योजना में स्थानीय ग्रामीणों और क्षेत्रीय वनवासियों की भागीदारी हो तथा उसका लाभ भी उन्हें प्राप्त हो सके। ऐसी अभिनव योजना की खोज सहकारिता में की गई। "सहकारिता वह योजना है जो जनता द्वारा, जनता के लिये लागू की गई है।"

मध्यप्रदेश में वृक्ष सहकारिता का उद्भव

सम्पूर्ण देश के 21 प्रतिशत वन मध्य प्रदेश में हैं। राज्य का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 4.43 लाख वर्ग किलोमीटर है जिसमें से 1.55 लाख वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र है। इस प्रकार कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत वन है, इसमें से 40 प्रतिशत भाग बिगड़े वनों की श्रेणी में आते हैं। जिसमें वनों का घनत्व और उत्पादकता बहुत कम है। ऐसे वन क्षेत्र को शासन के सीमित वित्तीय साधनों के अंदर पुनरोत्पादक बनाने के लिये लम्बे समय की आवश्यकता होगी। इस पृष्ठभूमि में स्थानीय ग्रामीणों के सहयोग से संस्थागत वित्त एवं ग्रामीण विभाग के अनुदान के माध्यम से वित्तीय साधन जुटाकर बिगड़े वनों के वनीकरण हेतु वृक्ष सहकारिता योजना 1991 में प्रारंभ की गई।

योजना के उद्देश्य

वनों के समीप और गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले कमजोर वर्ग के लोगों को परती भूमि पर वनीकरण के माध्यम से रोजगार के साधन उपलब्ध कराना और उत्पादित वनोपज का सम्पूर्ण हक दिलाकर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाना।

इमारती लकड़ी, जलाऊ लकड़ी और चारे की उत्पादकता में वृद्धि करते हुए ग्रामीणों की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

संस्थागत वित्त के माध्यम से अतिरिक्त साधन जुटाकर बिगड़े वनों में तेजी से सुधार करना ताकि पर्यावरण संतुलन बनाये रखने के साथ-साथ वनों की उत्पादकता में वृद्धि हो सके।

योजना का कार्यक्षेत्र

मध्य प्रदेश के 9 जिले ऐसे हैं जहां पर 15 प्रतिशत तक वन क्षेत्र हैं, इसी प्रकार 16 जिले ऐसे हैं जहां पर 16 से 32 प्रतिशत वन क्षेत्र हैं। शेष 20 जिले ऐसे हैं जहां पर भारतीय वन नीति के अनुसार 33 प्रतिशत से अधिक वन क्षेत्र हैं। उपरोक्त आंकड़ों

*शोध छात्र—डा. बाबा साहब आम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, महू (इन्दौर)

के अनुसार प्रदेश के 45 जिलों में से 24 जिलों में वन क्षेत्र कम हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि शेष 21 जिलों में वनों का प्रतिशत 33 प्रतिशत से ऊपर है फिर भी इन जिलों में ग्रामीणों की आवश्यकता की पूर्ति पूर्ण रूप से नहीं हो पा रही है। वृक्ष सहकारिता योजना को राज्य के इन्हीं 21 जिलों में प्रारम्भ किया गया है जिसमें 20 हजार हेक्टेयर वनक्षेत्र में प्रतिवर्ष के हिसाब से 10 वर्षों में दो लाख हेक्टेयर भूमि में वनीकरण करने का लक्ष्य है। इस योजना के अन्तर्गत सम्मिलित जिलों को दो भागों में विभाजित किया गया है :–

पूर्वी क्षेत्र : बस्तर, रायपुर, दुर्ग, राजनांदगांव, बिलासपुर, सरगुजा, बालाघाट, मण्डला, छिन्दवाड़ा व रायगढ़।

पश्चिमी क्षेत्र : प्रदेश के पश्चिम क्षेत्र में बढ़ते हुए रेगिस्तान को रोकने के लिये सम्मिलित किये गये जिले: मन्दसौर, झाबुआ, रतलाम, उज्जैन, धार, इन्दौर, खरगौन, गुना, रायसेन, राजगढ़, शाजापुर।

इस प्रकार योजना के प्रारंभ में उपरोक्त 21 जिलों में वृक्ष सहकारिता के माध्यम से वृक्षारोपण कार्य प्रारंभ किया गया है।

वृक्ष सहकारिता से लाभ

वृक्षारोपण का कार्य सहकारिता के क्षेत्र में आ जाने से वनों के विकास में मदद मिली है क्योंकि इस योजना का आर्थिक लाभ स्थानीय ग्रामीणों को प्राप्त होने से वनों की सुरक्षा बेहतर हो सकी है।

वृक्ष सहकारिता के माध्यम से वनवासियों को लाभ प्राप्त हो रहा है। वृक्षारोपण हेतु क्षेत्र तैयार करना, गड्ढे खोदना, रोपड़ी लगाना और सुरक्षा कार्य स्थानीय वनवासियों से कराया जाता है जिससे रोजगार के अवसर बढ़े हैं तथा उनकी आय में वृद्धि हुई है। वनीकरण से प्राप्त लाभ का वितरण वृक्ष सहकारी समिति के सदस्यों को प्राप्त होने से अतिरिक्त आय का लाभ भी उन्हें प्राप्त हो रहा है।

वनीकरण से वनों के क्षेत्र में वृद्धि होने से पर्यावरण की रक्ष होगी। पर्यावरण आज विश्व के लिये चिन्ता का विषय बना हुआ है। अतः वृक्ष सहकारिता द्वारा वृक्षारोपण का कार्य पर्यावरण सुधार करने का उत्कृष्ट उपाय है।

ग्रामीणों एवं वनवासियों की मूलभूत आवश्यकताओं में ईंध के रूप में, मकान बनाने तथा कृषि उपकरणों के लिए लकड़ी की आवश्यकता होती है। शहरी क्षेत्र के लोगों के लिये फर्नीचर औ मकान बनाने में लकड़ी का विशेष उपयोग होता है। वृक्षारोपण से शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्र के लोगों की लकड़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति होगी।

व्यक्ति का जीवन स्तर आय पर निर्भर होता है। वृक्ष सहकारिता से लोगों की आय बढ़ने से उनके जीवन यापन के तरीकों में परिवर्तन हो रहा है। योजना अवधि के 10 वर्ष के बाद समिति के सदस्यों को बड़ी मात्रा में लाभांश प्राप्त होगा जिससे उनके जीवन स्तर में व्यापक परिवर्तन होगा।

वनवासी अपने जीवन का लक्ष्य केवल पेट भरने हेतु भोजन उपलब्ध करने तक ही समझते हैं। वृक्ष सहकारिता से उन्हें अपने जीवन के महत्व का ज्ञान प्राप्त हुआ है, कि वे भी राष्ट्र के विकास में सहभागी हैं और देश की समस्याओं को हल करने में मदद कर रहे हैं। उनमें जिम्मेदारी की भावना पैदा हुई है तथा वे वनों के महत्व को भी समझ रहे हैं।

समिति स्तर पर पदाधिकारियों के चुनाव से वनवासियों को वोट के महत्व की जानकारी मिली है। लोगों में जनस्वास्थ्य एवं पर्यावरण के बारे में चेतना जागृत हुई है।

मिल जुलकर काम करने की सहकारी भावना का विकास हुआ है।

सरकार द्वारा उक्त योजना के कार्यान्वयन और ग्रामीण कमजोर वर्गों, वनवासियों को भागीदारी देने हेतु निरंतर शोध और अध्ययन की आवश्यकता है।

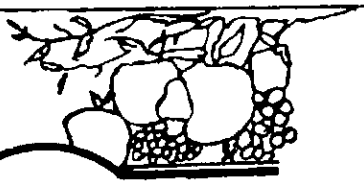

विजया श्री यूनिट

आपको और आपके अपनों को नव वर्ष की शुभकामनाएं

विजया श्री यूनिट और विजया गिफ्ट बांड के साथ उसे यादगार बनाइए

विजया श्री यूनिट और विजया गिफ्ट बांड, ऐसी योजनाएं हैं, जिसमें न केवल आपकी यानी निवेशकर्ता की रकम तेजी से बढ़ती रहेगी बल्कि आपको अनेक नेक सहूलियतें भी मिलेंगी। आप अंशतः या सारी रकम आसानी से निकाल सकेंगे। ब्याज का तिमाही में एक बार चक्रवर्धन किया जाता है। स्वतः नवीकरण की सुविधा भी है। जमा मूल्य और ब्याज के 75% तक तत्क्षण ऋण लिया जा सकेगा। अधिक यूनिटें खरीदने के लिए और पूंजी लगा सकेंगे। धारा 80 एल के अंतर्गत आयकर लाभ भी मिलेगा।

आपके लिए। विजया श्री यूनिट। एक ऐसी सावधि जमा योजना जिसमें आप रकम भी निकाल सकेंगे। प्रति यूनिट 1000/- रु है। अल्प, मध्यकालीन और यहां तक कि दीर्घकालीन जमाराशियों के लिए आदर्शप्रद है। यह सब तरह के जमाकर्ताओं के लिए सबसे अधिक सुविधाजनक, बहुउपयोगी और लाभकारी जमा योजना है।

आपके अपनों के लिए। विजया गिफ्ट बांड। एक ऐसा उपहार जिसका मूल्य वक्त के साथ बढ़ता रहेगा। प्रत्येक यूनिट के लिए 500/- रु है। हर मौके पर काम आएगा। इन बांडों के लिए 1 लाख रु. तक उपहार कर से छूट है।

विजया श्री यूनिट और विजया गिफ्ट बांड के बारे में अधिक जानकारी के लिए विजया बैंक की निकटतम शाखा से संपर्क करें।

विजया बैंक

(भारत सरकार का उपक्रम)

आपकी प्रगति का साथी

विजया गिफ्ट बांड

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एन) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालन
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N./708/57
P & T Regd. No. D/(DL) 12057/95
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली - 110002 द्वारा मुद्रित